प्रकाशक

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,
२० धर्मकूप, बनारस।

पहला संस्करण, १५० पृ०, ३००० प्रतियाँ, भाद्रपद २००३
दूसरा संस्करण, १८० पृ०, १०००० प्रतियाँ, आश्विन २००४
तीसरा संस्करण, १८२ पृ०, ७००० प्रतियाँ, कार्तिक २००५
चौथा संस्करण, १८२ पृ०, १०००० प्रतियाँ, ज्येष्ठ २००६

मुद्रक—
ओम् प्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय,
बनारस, २३६९–०६

समर्पण

हिन्दी के उन नवयुवक और होनहार

विद्यार्थियों को

जिनसे मातृ-भाषा और जन्म-भूमि को

बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं और

जो

हिन्दी का स्वरूप विशुद्ध और निर्मल

कर सकते हैं,

यह पुस्तक बहुत ही आशापूर्वक

समर्पित है।

अच्छी हिन्दी

सीखना चाहते हों तो

'अच्छी हिन्दी'

पढ़िए।

चौथा परिवर्द्धित संस्करण

पृष्ठ ३७१ मूल्य ३)

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,

२० धर्मकूप, बनारस।

भूमिका

आज-कल सारे भारत में हिन्दी का जितना अधिक प्रचार है, उतना और किसी भाषा का नहीं है, और लक्षणों से जान पड़ता है कि बहुत जल्दी वह समय आनेवाला है, जब कि हिन्दी का प्रचार देश के कोने-कोने में और घर-घर हो जायगा। जितने थोड़े समय में हिन्दी का जितना अधिक प्रचार हुआ है, उतने थोड़े समय में कदाचित् ही संसार की किसी और भाषा का उतना अधिक प्रचार हुआ हो। यह हमारे लिए परम प्रसन्नता और सौभाग्य की बात है।

पर इसके साथ ही एक बहुत अधिक खेद और दुर्भाग्य की बात भी लगी हुई है। वह यह कि हम हिन्दी लिखनेवाले अपनी भाषा की शुद्धता का कुछ भी ध्यान नहीं रखते। हिन्दी के बहुत अधिक लेखक मन-मानी भाषा लिखते हैं और मन-माने प्रयोग करते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि लोग समझते हैं कि हम जो कुछ लिख दें, वही हिन्दी है। उनका यह समझना इसलिए बहुत-कुछ ठीक भी हो सकता है कि प्रायः उनकी भूलों की ओर कभी कोई ध्यान नहीं देता। ध्यान दे भी कौन ? यहाँ ईश्वर की दया से सभी एक-से हैं, बल्कि एक से एक बढ़कर हैं। यदि कोई दूसरों की दस भूलें दिखलावे, तो दूसरे उसकी सौ भूलें दिखला सकते हैं। इसलिए भाषा की अशुद्धियों के सम्बन्ध में सब लोग मौन रहना ही अच्छा समझते हैं।

पर क्या यह मौन कभी हमारे लिए या हमारी भाषा के लिए अच्छा हो सकता है ? मातृ-भाषा माता के समान होती है। क्या उसका स्वरूप बिगाड़नेवाले कभी सपूत कहला सकते हैं ? या कभी उनका कल्याण हो सकता है ? चाहिए तो यह कि हम अपनी भाषा का स्वरूप इतना अधिक विशुद्ध और मनोहर रक्खें कि वह दूसरों के लिए आदर्श हो। जिस प्रकार हम अपने साहित्य का भंडार अच्छे

अच्छे ग्रंथ-रत्नों से भरना चाहते हैं, उसी प्रकार हमें अपनी भाषा क
स्वरूप भी परम निर्मल और उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए
रद्दी और भद्दी भाषा में लिखा हुआ अच्छा-से-अच्छा साहित्य भी कभी
आदरणीय और स्थायी नहीं हो सकता।

बात बहुत कुछ बिगड़ चुकी है और दिन-पर-दिन बिगड़ती चली
जा रही है। इसलिए अब हम लोगों को सचेत होकर भाषा के सुधार
अपनी पूरी शक्ति लगानी चाहिए। यही सोचकर प्रायः दो वर्ष
पहले मैंने 'अच्छी हिन्दी' नामक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक में मैंने
हिन्दी भाषा में होनेवाली सैकड़ों-हजारों प्रकार की भूलों की ओर
हिन्दीवालों का ध्यान खींचने का प्रयत्न किया था। हर्ष का विषय है
कि उस पुस्तक के कारण बहुत-से लोगों का ध्यान भाषा की शुद्धता
की ओर हो चला है। सभी प्रकार के लेखक भाषा की शुद्धता की
आवश्यकता मानने लगे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में तो उक्त पुस्तक का
इतना अधिक आदर हुआ कि एक डेढ़ वर्ष के अन्दर ही देश भर
के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों और हिन्दी की बड़ी-बड़ी परीक्षाएँ लेने-
वाली संस्थाओं ने उसे अपने यहाँ के पाठ्य-क्रम में रख लिया। अब
इतना तो हो गया है कि जो एक बार वह पुस्तक पढ़ लेंगे, वे बहुत-सी
भूलों से अनायास बच जायँगे।

परन्तु मैं समझता हूँ कि भाषा की शुद्धता की ओर विद्यार्थियों
का ध्यान और भी पहले दिलाना चाहिए। विश्वविद्यालयों आदि में
पहुँचने पर तो विद्यार्थियों की भाषा बहुत-कुछ मँज चुकती है—वे
एक विशेष प्रकार की भाषा लिखने के बहुत कुछ अभ्यस्त हो चुकते
हैं। उस समय उनकी भाषा में बहुत अधिक सुधार नहीं किया जा
सकता। पर यदि उससे कुछ और पहले ही उन लोगों को बतला
दिया जाय कि भाषा लिखने में कितने प्रकार की और कैसी
कैसी भूलें होती हैं, तो वे आरम्भ में ही उन भूलों से बचने लगेंगे,

और आगे चलकर वे निर्दोष और शुद्ध भाषा लिखने लगेंगे। यही सोचकर यह पुस्तक ऐसे विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है, जिन्हें व्याकरण का साधारण ज्ञान हो चुका हो; अर्थात् आज कल के स्कूलों के नवें दसवें दरजों के विद्यार्थियों या उनके समान योग्यता रखनेवाले अन्य विद्यार्थियों के हित के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि और लोग इससे लाभ नहीं उठा सकते। इसमें भाषा की शुद्धता से सम्बन्ध रखनेवाली बहुत-सी ऐसी बातें बतलाई गई हैं, जो अच्छे अच्छे लेखकों के लिए भी बहुत अधिक उपयोगी हो सकती हैं। जब इस प्रकार की बातें विद्यार्थी लोग स्कूल छोड़ने से पहले ही सीख लेंगे, तब उनका एक ऐसा बहुत बड़ा दल तैयार हो जायगा, जो हिन्दी भाषा के सब दोषों का समूल नाश करके उसका मुख उज्वल कर दिखलावेगा।

अपने आदरणीय मित्र पटने के राय ब्रजराजकृष्ण जी का मैं बहुत अधिक अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने प्रायः एक वर्ष पूर्व 'अच्छी हिन्दी' देखकर मुझसे कहा था कि यदि इसी प्रकार की एक पुस्तक हाई स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए बन जाय, तो बहुत अच्छा हो। यदि उनका यह शुभ परामर्श मुझे न मिलता, तो न जाने यह पुस्तक बनती भी या न बनती। इसलिए इस पुस्तक की तैयारी का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। इसके लिए मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक अपने प्रिय मित्र पं० विश्वनाथ-प्रसाद जी मिश्र, एम० ए० साहित्य-रत्न को भी मैं धन्यवाद देना नहीं भूल सकता, जिनसे मुझे इस सम्बन्ध में कई बहुत ही उपयोगी परामर्श मिले हैं।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी
सं० २००३ } रामचन्द्र वर्म्मा

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१. शब्दों के प्रकार	...	१–१२
२. शब्दों के रूप	...	१३–२०
३. शब्दों के अर्थ	...	२१–३८
४. शब्दों का चुनाव	...	३९–४८
५. शब्दों का स्थान	...	४६–५७
६. हिन्दी ढंग	...	५८–६५
७. वाक्यों की बनावट	...	६६–८१
८. संज्ञाएँ	...	८२–९०
९. सर्वनाम	...	९१–१०१
१०. विशेषण	...	१०२–११२
११. क्रियाएँ	...	११३–१२८
१२. वचन	...	१२९–१४२
१३. लिंग	...	१४३–१५८
१४. विभक्तियाँ	...	१५९–१७०
१५. निबन्ध	...	१७१–१८२

—o—

हिन्दी प्रयोग

१

शब्दों के प्रकार

हर भापा मे कई प्रकार के शब्द होते हैं। इसका कारण यह है कि हर भाषा और उसके वोलनेवालों का कुछ इतिहास होता है। भापा वहुत दिनो में वनती है और वरावर कुछ-न-कुछ वदलती रहती है। वहुत-से पुराने शब्द अनेक कारणों से छूट जाते हैं; और उनकी जगह नये शब्द वनते रहते हैं और वाहर से आकर मिलते भी रहते हैं। जव हमे कोई नई चीज, नया विचार या नया भाव मिलता है, तव या तो हम उसके लिए कोई नया शब्द गढ़ लेते है, या किसी दूसरी भापा से ले लेते हैं। इसके सिवा वरावर वोल-चाल में आते रहने के कारण शब्दों के रूप वदलते भी रहते है। इन सव वातो का भापा के रूप पर वहुत प्रभाव पड़ता है; और उस प्रभाव का यह फल होता है कि शब्दों और भापा का रूप सदा कुछ-कुछ वदलता चलता है और अनेक प्रकार के शब्द वढ़ते रहते हैं।

किसी समय हमारे देश का सारा साहित्य संस्कृत में लिखा जाता था। पर साहित्य की भापा सव लोगो के नित्य के व्यवहार की भापा नहीं हो सकती। कारण यह है कि साहित्य की भापा अधिक पढ़े-लिखे लोगों की भापा होती है, और वोल-चाल की भापा कम पढ़े-लिखे लोगों

की । आज-कल भी हमारे नित्य के व्यवहार की भाषा कुछ सहज
साहित्य की भाषा कुछ कठिन । यही बात पहले भी थी । साधा
बोल चाल की भाषा प्राकृत कहलाती थी । धीरे-धीरे संस्कृत का प्र
कम होने लगा, प्राकृत का प्रचार बढ़ने लगा और उसी में साहि
लिखा जाने लगा । हमारा देश बहुत बड़ा है और उसमे अनेक प्र
है । इसलिए धीरे-धीरे हर एक प्रदेश की प्राकृत भी एक दूसरी से इ
अलग होती गई । प्राकृतों के बाद अपभ्रंश भाषाओं का विकास अ
प्रचार हुआ । इन्हीं अपभ्रंश भाषाओ से आज-कल की हिन्दी, बँग
गुजराती, मराठी आदि प्रान्तीय भाषाएँ निकली हैं ।

हिन्दी में मुख्य रूप से दो प्रकार के शब्द है—एक तो संस्
के; और दूसरे वे जो प्राकृत और अपभ्रंश के द्वारा अपना रूप बद
हुए अब तक हमारी बोल-चाल में चले आ रहे हैं । संस्कृत के जो श
हम ज्यो के त्यो काम में लाते हैं, वे **तत्सम** कहलाते हैं । तत्सम
अर्थ है—उसके समान या ज्यो का त्यों । समय, पुस्तक, पाठशाल
विद्या, माता, पिता, जल, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, नगर, नदी, निन्द
प्रशंसा, भोजन, निद्रा आदि शब्द संस्कृत के है; पर आज भी ह
अपनी भाषा में इनका इन्हीं रूपो में व्यवहार करते है । ये सब श
हमने संस्कृत से ज्यो के त्यों ले लिये हैं । ऐसे सभी शब्द तत्स
कहलाते हैं ।

पर हमारी भाषा मे बहुत-से ऐसे शब्द भी है जो निकले तो संस्कृ
से ही है, पर जो हजारो वर्षों से व्यवहार मे आने के कारण बहुत-कु
घिस पिस गये हैं । अब उन शब्दों के वे रूप नहीं रह गये, जो संस्कृ
में थे । हम कहते हैं—'हमें नींद आ रही है ।' यह 'नींद' शब्द कहाँ से
आया ? संस्कृत के 'निद्रा' शब्द से । हम कहते है—'हमें प्यास लगी
है ।' यह 'प्यास' शब्द संस्कृत 'पिपासा' का बिगड़ा हुआ रूप है । ऐसे
शब्द तद्भव कहलाते है । हिदी में ऐसे शब्द बहुत हैं । यहाँ हम

ंस्कृत और हिन्दी के कुछ ऐसे शब्द देते हैं, जिनसे तत्सम और तद्भव का भेद सहज में मालूम हो जायगा।

तत्सम	तद्भव
ग्राम	गॉव
क्षेत्र	खेत
दुग्ध	दूध
वर्षा	वरसात
गृह	घर
पृष्ठ	पीठ
दन्त	दॉत
मुक्ता	मोती
ज्येष्ठ	जेठ
पत्र	पत्ता

हिन्दी भाषा इस प्रकार के हजारो तद्भव शब्दो से भरी है। सच पूछिए तो ये तद्भव शब्द ही हमारी अपनी पूँजी है। हमारी सब क्रियाएँ, सर्वनाम और वहुत-सी संज्ञाएँ, विशेषण और क्रिया-विशेषण तद्भव हैं। कुछ शब्द तो ऐसे हैं जिन्हे देखते ही सहज में पता चल जाता है कि ये संस्कृत के किस शब्द से निकले है। जैसे—सपना स्वप्न से, आग अग्नि से और काज कार्य से निकला है। पर कुछ शब्द ऐसे भी है जिनके मूल का सहज में पता नही चलता। जैसे फाटक वना तो है सस्कृत कपाट से, पर उसके कुछ अक्षर आगे-पीछे हो गये हैं। शब्दों के अक्षरो का इस प्रकार का हेर-फेर वर्ण व्यत्यय कहलाता है। ऐसे ही और भी कई प्रकार है, जिनसे यह पता चलता है कि तत्सम से तद्भव शब्द कैसे वनते । पर इस विषय का एक अलग शास्त्र है।

हिन्दी में कुछ ऐसे शब्द भी है जो वास्तव में तद्भव होने पर भी देखने मे प्रायः तत्सम जान पड़ते है; और इसी लिए वहुत-से लोग

जिन्हें भूल से तत्सम ही समझ और मान लेते हैं। 'ण' है तो सं० 'पण' से निकला हुआ होने के कारण तद्भव, पर कुछ लोग भूल से इसे संस्कृत का शब्द और तत्सम ही समझते है। 'आशा' और 'नैराश्य' तो शुद्ध संस्कृत के शब्द होने के कारण तत्सम हैं, पर 'निराशा' संस्कृत का शब्द नहीं है वह संस्कृत 'आशा' में हिन्दी का 'निर' उपसर्ग जोड़कर या 'निराश' में 'ा' जोड़कर बना लिया गया है; और इसी लिए यह भी तद्भव ही माना जाना चाहिए। इसी प्रकार संस्कृत 'अभिलाष' से बना हुआ हिन्दी 'अभिलाषा', सं०'अज्ञान' से बना हुआ हिन्दी 'अज्ञानी', सं० 'पूत' से बना हुआ हिन्दी 'पुनीत', सं०'सुविध' से बना हुआ हिन्दी 'सुविधा' और सं० 'निशा' से बना हुआ हिन्दी 'निशि' आदि शब्द वास्तव मे तद्भव ही हैं। ऐसे शब्दों को तत्सम समझना भूल है।

तत्सम और तद्भव के बीच का एक और प्रकार है जो अर्द्ध-तत्सम कहलाता है। हम पहले बता चुके है कि जब संस्कृत के बहुत-से शब्दों के रूप कुछ बदल गये, तब वे प्राकृत के शब्द बने; और प्राकृत शब्दों के रूप जब कुछ और भी बदले, तब वे हिन्दी के तद्भव शब्द हुए। पर कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका रूप प्राकृत में तो बदला हुआ अवश्य था, पर जो प्राकृत से हिन्दी में ज्यों के त्यो आ गये—उनके रूपों में फिर कोई नया परिवर्त्तन नहीं हुआ। इस प्रकार के कुछ शब्द पुरानी हिन्दी में पाये या कहीं-कहीं गॉव-देहातों में बोले जाते हैं। जैसे सं०अग्नि से प्राकृत रूप 'अगिन' हुआ था, पर हिन्दी में वह 'आग' हो गया। 'अगिन' अब भी कहीं कहीं गॉव-देहात में बोला जाता है। यह 'अगिन' रूप अर्द्ध-तत्सम कहलाता है। पुरानी कविताओं में पाया जानेवाला 'दई' शब्द सं० दैव का अर्द्ध-तत्सम रूप है, जो आज-कल की हिन्दी में नहीं चलता। अब हम फिर उसकी जगह तत्सम 'दैव' का ही प्रयोग करने लगे हैं। 'रात' शब्द ऐसा है जो अर्द्ध-तत्सम ही है और हिन्दी में अब तक इसी रूप में चलता है। स्पष्ट है कि यह सं० रात्रि से निकला है।

आज-कल की हिन्दी में ऐसे अर्द्ध-तत्सम शब्द बहुत थोड़े हैं। इन्हे हम शब्दों के तीसरे प्रकार में मान सकते है।

शब्दों का चौथा प्रकार 'देशज' कहलाता है। देशज का अर्थ है—देश में उत्पन्न या देश में बना हुआ। प्रायः ऐसा होता है कि जब कोई नई चीज हमारे सामने आती है और हम उसका पहले से चला आया हुआ नाम नही जानते या वैसा कोई नाम हमें नहीं मिलता, तब हम उसके लिए आप ही एक नया नाम गढ़ लेते हैं। 'देशज' इसी प्रकार के गढ़े हुए शब्द हैं। खिड़की, रद्दा, लच्छा, लगभग, गड़बड़ आदि शब्द देशज हैं। पर हम इस प्रकार के सब शब्दों को निश्चित रूप से देशज भी नहीं कह सकते। हो सकता है कि आगे चलकर हमें पता लगे कि अमुक देशज शब्द संस्कृत अथवा ओर किसी भाषा के अमुक शब्द से निकला या अमुक प्रकार से बना है। साधारणतः होता यही है कि जिन शब्दो के सम्बन्ध में हम निश्चित रूप से यह नही जानते कि वे कहाँ से आये या किस शब्द से निकले या कैसे बने हैं, उन्हें हम देशज के वर्ग में रख लेते है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी देशज शब्द इसी प्रकार के हैं। जैसा कि हम पहले कह चुके है, किसी दूसरे शब्द की सहायता के बिना भी कुछ शब्द गढ़ लिये जाते हैं; और वही देशज कहलाते हैं। यह बात दूसरी है कि हम भूल या अज्ञान से कुछ ऐसे शब्दों को भी देशज मान ले, जो वास्तव में देशज नहीं, बल्कि तद्भव है।

शब्दों का एक और प्रकार है, जो 'अनुकरण-वाचक' कहलाता है। जब कोई बार-बार खट खट शब्द करता है, तब हम उसे खट-खटाना कहते हैं। जब हमें कोई चीज चम चम करती हुई दिखाई देती है, तब हम उस क्रिया को 'चमकना' कहते हैं। जिस पक्षी को हम पी पी रटते हुए देखते हैं, उसे हम 'पपीहा' कहते है। कौआ काँ काँ या काँव काँव करता है; इसी लिए संस्कृतवालों ने उसका नाम काग रख

लिया था; और अब हम उसे कौआ कहते हैं। लड़खड़ाना, सड़सड़ाना, दुर्दुराना, ललकारना, लपकना आदि क्रियाएँ और पटाका, सिटकिनी आदि संज्ञाएँ अनुकरण वाचक हैं। ऐसे शब्द किसी क्रिया के अनुकरण पर बने हुए होते है। कभी कभी किसी देश या स्थान के नाम पर भी कुछ शब्द गढ़ लिये जाते हैं। जैसे चीन से चीनी, मिस्र से मिस्री और करौली (राजपूताने का एक नगर) से करौली (एक प्रसिद्ध शस्त्र)।

एक और प्रकार के अनुकरण-वाचक शब्द होते हैं, जो किसी प्रचलित शब्द के अनुकरण पर बनते हैं। जैसे भीड़-भाड़, धूम-धड़क्का, खट-पट आदि। इनमें के भाड़, धड़क्का और पट अपने पहले के शब्दो के अनुकरण मात्र हैं। कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर किसी पुराने शब्द के अनुकरण पर भी उसी प्रकार का कोई नया शब्द गढ़ लिया जाता है; जैसे 'मॅझला' के अनुकरण पर 'सॅझला' और 'विधवा' के अनुकरण पर 'सधवा' शब्द गढ़ लिया गया है। 'चोखा' का अर्थ होता है (क) तेज और (ख) बढ़िया या अच्छा। इसके अनुकरण पर कहीं-कहीं 'ओखा' शब्द चलता है, जिसका अर्थ 'चोखा' का उल्टा अर्थात् हलका या घटिया है। कभी-कभी बोल-चाल में भी किसी शब्द के अनुकरण पर कोई ऐसा शब्द मुँह से निकल जाता है, जिसका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे—यहाँ पैसा-वैसा कुछ नहीं है। इसमें का 'वैसा' कुछ अर्थ नहीं रखता। वह 'पैसा' का अनुकरण मात्र है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो अनुकरण-वाचक सब शब्द भी देशज ही के वर्ग मे आते हैं। देशज से अलग उनका कोई और प्रकार नहीं है। यदि भेद है तो केवल उनके बनने के प्रकार का। प्रायः इसी वर्ग में वे शब्द भी रक्खे जा सकते हैं, जो 'तदर्थीय' कहलाते है। चित्रकारी, छापे आदि में एक प्रकार की वेल होती है, जिसे संस्कृत में 'गोमूत्रिका' और हिन्दी मे 'बरध-मुतान' कहते हैं। इसमे का 'बरध' शब्द सं० बलिवर्द के अन्तिम अंश 'वर्द' से और 'मुतान' हि० मूतना

(सं० मूत्र) से निकला है ; पर 'वरध-मुतान' शब्द देशज और तदर्थीय है। हमारे यहाँ का 'रजत-पट' संस्कृत का तत्सम होने पर भी अँगरेजी शब्द Silver Screen के अनुकरण पर बना हुआ तदर्थीय शब्द ही है।

इस प्रकार के शब्दों के सिवा हमारी भाषा में एक और प्रकार के शब्द मिलते हैं, जिन्हें कुछ लोग 'विदेशी' कहते हैं, पर एक विशेष कारण से जिन्हें 'परकीय' या पराया कहना अधिक अच्छा होगा। हर भाषा में दूसरी भाषाओं के थोड़े-बहुत शब्द होते हैं और हमारी हिन्दी में भी हैं। हमारे यहाँ का 'पिल्ला' शब्द दक्षिण भारत की किसी भाषा से और 'लीची' शब्द चीनी भाषा से आया है। होता यह है कि हर देश के लोग दूसरे देशों में आते-जाते रहते हैं। और जब दो देशों के लोग आपस में मिलते है, तब उनमे काम की चीजों का लेन-देन भी होता है। चीजों के साथ कभी-कभी शब्दों का भी कुछ लेन-देन हो जाता है। यही कारण है कि हमारी भाषा में अरबी, फारसी, तुर्की, फ्रान्सीसी, पुर्तगाली आदि बहुत-सी भाषाओं के थोड़े-बहुत शब्द आकर मिल गये है। और इधर कुछ दिनों से अँगरेजी शब्द भी बहुत बड़ी संख्या मे हमारी भाषा मे आ गये हैं। यदि हम तत्सम और तद्भव का मूल और व्यापक अर्थ लें, तो हम कह सकते है कि इस प्रकार के परकीय शब्द हमारे यहाँ तत्सम रूप में भी आये है और हमने उनके तद्भव रूप भी बना लिये है। सवाल, जवाब, कागज, जरूरत, अन्दाज, कैंची, कोट, रेडियो, बल्ब, पेन्सिल, फुट, बूट आदि शब्द परकीय होने पर भी अपने तत्सम रूप मे ही हिन्दी मे चलते है। पर 'सड़क' अरबी के 'शरक' का तद्भव रूप है। 'मिस्तरी' 'मास्टर' का, 'रद्दी' 'रद्द' का, 'रवड़' 'रबर' का, 'लँगड़ा' 'लंग' का, 'पतलून' 'पेन्टलून' का, 'पलटन' 'प्लैटून' का और 'कोचवान' 'कोचमैन' का तद्भव रूप है। इस रूप मे संज्ञाएँ ही नहीं बल्कि कुछ क्रियाएँ और विशेषण भी हमारे यहाँ

प्रचलित हैं। 'जोश' से बना हुआ जोशीला, 'गुजर' से बना हुआ गुज़रना और 'नजर' से बना हुआ नजराना (नजर लगने या लगाने के अर्थ में) आदि क्रियाएँ इसके उदाहरण है। हमारे यहाँ का 'चपरासी' शब्द फारसी के 'चप व रास्त' (दाहिने-बाएँ खड़े रहनेवाले) से बना है और उस 'चपरासी' से हमने एक अलग शब्द 'चपरास' भी बना लिया है। अँगरेजी रैस्पबेरी (Rasp berry) के ढंग पर हमने मकोय नामक फल के लिए जो 'रस-भरी' शब्द बनाया है, वह तो किसी तरह पराया जान ही नहीं पड़ता।

ऊपर परकीय शब्दों के प्रसंग में हमने फारसी का भी नाम लिया हैं। आज-कल फारसी भले ही परकीय भाषा कहलाती हो, पर वास्तव मे वह भी हमारी संस्कृत की ही एक शाखा या अधिक से अधिक एक प्रकार की प्राकृत है। उसमें के सैकड़ो-हजारों शब्द संस्कृत शब्दों से ही निकले या बने हैं। जैसे शाखा से शाख, अश्व से अस्प, गो से गाव, बन्ध से बन्द आदि। फारसी का 'सर' शब्द भी उसी प्रकार का तद्भव शब्द है, जिस प्रकार हिन्दी का 'सिर'। 'कलम' हमारे यहाँ संस्कृत में तो है ही ; ठीक इसी अर्थ में वह अरबी में भी है। खाली उसका 'क' 'क' बन गया है। संस्कृत के मातृ, पितृ और भ्रातृ, फारसी के मादर, पिदर और बिरादर तथा अँगरेजी के मदर, फादर और ब्रदर में इसलिए बहुत कम अन्तर है कि इन सब का मूल एक ही है।

इधर कुछ दिनो से हमारे यहाँ बँगला, मराठी आदि के भी कुछ शब्द चलने लगे हैं। नितान्त, बाध्य, संभ्रान्त आदि शब्द यद्यपि देखने में संस्कृत के जान पड़ते हैं, पर हैं वास्तव में बँगला के देशज शब्द। उपन्यास और प्रतिशब्द हैं तो संस्कृत के शब्द, पर आज-कल वे हिन्दी मे जिन अर्थों में चलते हैं, वे अर्थ हमने बँगला से लिये हैं। इसी प्रकार लागू, चालू, प्रगति और आभार सरीखे कुछ शब्द मराठी से हमारे यहाँ आये हैं। इन शब्दो को हम इसलिए

'विदेशी' नहीं कह सकते कि ये हमारे ही देश के दूसरे प्रान्तों के शब्द है। इसी लिए ऊपर हमने इस वर्ग के शब्दो को 'परकीय' कहा है।

शब्दों के सम्बन्ध मे ध्यान रखने की कुछ और बातें भी है, जो उनके अर्थों से सम्बन्ध रखती है। पहली बात तो यह है कि सभी भाषाओ में बहुत-से ऐसे शब्द रहते हैं, जिनके कई कई अर्थ होते हैं। ऐसे शब्द जब तत्सम रूप में लिये जाते है, तब यह आवश्यक नहीं होता कि उनके सब अर्थ भी लिये ही जायँ। कभी तो हम उनके सब अर्थ ले लेते हैं और कभी एक ही दो अर्थ लेते है। तत्सम शब्दों में कुछ ऐसे भी होते है जिनका अर्थ, लिंग या वचन दूसरी भाषा में जाने पर बदल जाता है। कभी कभी ऐसे शब्दो के साथ कुछ नये अर्थ भी जुड़ जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि तद्भव शब्दो के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उनके वही अर्थ रहें जो उनके मूल शब्दो के हों। हमारे यहाँ का 'कंगाल' शब्द सं० कङ्काल से निकला है, जिसका अर्थ है हड्डियों का ढाँचा या ठठरी। 'ठठरी' के लिए तो हम कङ्काल शब्द का प्रयोग करते हैं; पर कंगाल का अर्थ ठठरी नहीं होता, बल्कि 'बहुत दरिद्र' होता है। 'अग्नि' और 'आत्मा' सं० मे पुंलिग है, पर हिन्दी में स्त्री-लिंग माने जाते हैं। तद्भव शब्दो में हम अपनी आवश्यकता के अनु-सार कुछ और अर्थ भी चढ़ा लेते है। 'काटना' शब्द सं० कर्त्तन से निकला है। पर 'काटना' हमारे यहाँ जितने अर्थों में चलता है, वे सब अर्थ कर्त्तन के नहीं है। 'काटना' का पहला अर्थ है—किसी चीज को बीच से इस तरह अलग कर देना कि उसका कुछ भाग उसमें से निकल जाय। पर जब दूसरे अवसरो पर भी हमें इससे मिलता-जुलता भाव प्रकट करना होता है, तब भी हम 'काटना' का प्रयोग करते हैं। हम जल से तो स्नान करते ही हैं, पर वायु, धूप और वाष्प का भी स्नान होता है; और चन्द्रमा की चाँदनी में पृथ्वी का भी स्नान

ही है, न तद्भव। जैसा कि हम अभी बतला चुके हैं, यह हिन्दी के तद्भव 'काला' शब्द का संक्षिप्त रूप है। 'रास' शब्द कृष्ण और गोपियो के नृत्य के अर्थ में तत्सम होता है; और 'ढेर' के अर्थ में सं० राशि से निकला हुआ होने के कारण तद्भव। पर जब हम उसका प्रयोग 'लगाम' के अर्थ में करते हैं, तब वह अरबी से ज्यों का त्यो लिया हुआ होने के कारण परकीय तत्सम होता है। फिर कभी-कभी हम यह भी कहते हैं–'यह बात हमें रास नहीं आती।' अर्थात्—हमारे अनुकूल नहीं पड़ती। इस अर्थ में यह फारसी के 'रास्त' शब्द से निकला हुआ होने के कारण परकीय तद्भव होता है। इन सब बातों का यही अभिप्राय है कि किसी शब्द का भेद या प्रकार उसके रूप से नहीं, बल्कि उसके अर्थ के विचार से निश्चित होता है।

२

शब्दों के रूप

बोलने या लिखने के समय शब्दों के ठीक ठीक रूप का पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि हम मन-माने ढंग से शब्दो के रूप बना-बनाकर बोलने या लिखने लगें, तो हमारी बात जल्दी दूसरों की समझ में ही न आवे। हर चीज का एक ऐसा स्थिर रूप होता है, जिसे सब लोग जानते और मानते हैं। ऐसे रूप को हम 'मानक' कह सकते हैं। 'मानक' वही चीज है, जिसे कुछ लोग मान-दण्ड या माप-दण्ड कहते हैं। 'मानक' इन्हीं शब्दो का सीधा-सादा, सहज और हलका रूप है। जो चीज अपने मानक से गिरी हुई होती है, उसका कहीं मान नहीं होता।

बहुत-से लोग आये, गये, लिये, दिये आदि लिखते हैं; और बहुत-से लोग आए, गए, लिए, दिए आदि। पर अधिक शिष्ट रूप आये, गये आदि ही माने जाते हैं। इनमें से 'लिये' और 'लिए' के सम्बन्ध में ध्यान रखने की बात यह है कि 'वास्ते' के अर्थ में तो 'लिए' और क्रिया के रूप में 'लिये' लिखना अधिक ठीक और अच्छा जान पड़ता है। यदि यह भेद न रक्खा जाय तो किसी अवसर पर पढ़नेवालों को भ्रम हो सकता है। होना चाहिए—'हम आपके लिए इतनी दूर से चलकर आये हैं।' और 'हमने आज कई नये कपड़े लिये हैं।'

चाहिये, कीजिये, दीजिये और लीजिये से चाहिए, कीजिए, दीजिए और लीजिए रूप ही अधिक अच्छे समझे जाते हैं। ये रूप लिखाई और छापे में भी सहज होते हैं और उच्चारण से भी बहुत-कुछ मिलते-जुलते होते हैं।

लिखने से पहले शब्दों के मानक रूप अच्छी तरह समझ लेने चाहिएँ और तब उन्हें उन्हीं रूपों में लिखना चाहिए। कहीं 'पावे', कहीं 'पाये', कहीं 'पावै' और कहीं 'पाए' नहीं लिखना चाहिए। भूत और वर्तमान काल में 'पाये' और भविष्यत् काल में (विशेषतः 'गा' के साथ) 'पावे' रूप ही हिन्दी में मानक माना जाता है। जैसे—'हमने सौ रुपये पाये थे (या हैं)' और वह सौ रुपये पावेगा।' 'लिए गये' या 'लिये गए' आदि भी लिखना ठीक नहीं है, क्योंकि इनमें से एक क्रिया 'ए' से और दूसरी 'ये' से लिखी गई है। 'लिये गये' लिखना ही ठीक है। 'होवें', 'लेवें', 'देवें' आदि से 'हो', 'लें', 'दें' आदि सहज भी हैं और सुन्दर भी। जायगा, जावेगा, जाएगा आदि रूपों मे से 'जायगा' ही अधिक प्रचलित और अच्छा है; पर 'आयगा' या 'आएगा' ठीक नहीं माना जाता, 'आवेगा' ही ठीक माना जाता है। 'देवेगा', 'लेवेगा' आदि न लिखकर सदा 'देगा' 'लेगा' आदि ही लिखना चाहिए। तात्पर्य यह कि शब्दों की अक्षरी या हिज्जे सदा ठीक और एक-सी होनी चाहिए। कहीं 'कुँअर' और कही 'कुँवर', कहीं 'रिआयत' और कहीं 'रियायत', कहीं 'हलुआ' और कहीं 'हलुवा' नहीं लिखना चाहिए। हर शब्द का रूप सदा एक-सा रखना चाहिए।

साधारणतः हिन्दी भाषा के दो रूप माने जाते हैं—एक पश्चिमी, दूसरा पूर्वी। कुछ कारणों से शब्दों के प्रायः पश्चिमी रूप और पश्चिमी शब्द ही अधिक अच्छे माने जाते हैं; और हिन्दी में अधिकतर वही चलते हैं। जैसे चिल्लाना, सोना, सिर आदि पश्चिमी रूप और शब्द हैं; चिचियाना, सूतना, कपार या मूड़ आदि पूर्वी। यदि हम कहें—

'हम चिचियाते रहे' और 'आप सूतते रहे' तो यह अच्छी हिन्दी नहीं होगी। अच्छी हिन्दी तभी होगी, जब हम कहेंगे—'हम चिल्लाते रहे' और 'आप सोते रहे'। 'हम चौंतरे से नीचे फेंका गये।' सुनकर लोग हँसेंगे; इसलिए 'गिर गये' कहना ही ठीक होगा। 'कड़हिया', 'छँटैया' आदि रूप पूर्वी और 'कड़ाही', 'छँटाई' आदि रूप पश्चिमी हैं; और हिन्दी में यही रूप ठीक माने जाते है।

पर यह बात नहीं है कि सब जगह सदा पश्चिमी रूप ही ठीक माने जाते हो। पश्चिम के कुछ प्रयोग ऐसे भी हैं जो हिन्दी में नहीं चलते। पश्चिमी रूप 'खैंचना' और 'घड़ना' हिन्दी मे नहीं चलते, पूर्वी रूप 'खींचना' और 'गढ़ना' ही चलते हैं। पश्चिम में प्रायः 'दीखना' बोलते हैं, पर हिन्दी में उसकी जगह 'दिखाई देना' ही अच्छा माना जाता है। पश्चिमी हिन्दी पर उर्दू का भी बहुत-कुछ प्रभाव पड़ा है। पश्चिम में और मुख्यतः उर्दू मे 'भूक', 'धोका', 'सर' आदि रूप चलते हैं; पर हिन्दी में 'भूख', 'धोखा', 'सिर' आदि ही ठीक माने जाते हैं।

इन सब बातो का आशय यही है कि हिन्दी का अपना एक अलग रूप है, जिसमें बहुत-सी बाते पश्चिम से और कुछ बातें पूरब से भी ली गई हैं। पर हिन्दी का प्रचार सारे भारत में है और सभी प्रान्तो के लोग हिन्दी लिखते और बोलते हैं। इसलिए प्रायः लोग अपने प्रान्त के या अपने यहाँ के आस पास बोली जानेवाली भाषाओं के कुछ प्रयोग भी हिन्दी में मिला देते है। मध्य प्रदेश में 'दिखाना' या 'दिखलाना' की जगह 'बताना' या 'बतलाना' बोलते है। जैसे—'जरा अपनी पुस्तक मुझे भी बताओ' (दिखलाओ के अर्थ मे)। दिल्ली, मेरठ आदि की ओर 'चुनना' की जगह 'चिनना' बोलते हैं। कुछ स्थानों में 'चाहिए था' की जगह 'चाहता था' और 'गया है' की जगह 'गया हैगा' तक बोलते हैं। जैसे—'आपको वहाँ नहीं जाना चाहता था।' और 'वह यहाँ से चला गया हैगा।' पूरबवाले बोलते हैं—'हम सोचे।' 'हम कहे।'

आदि। बंगालियों से सम्बन्ध रखनेवाले लोग बोलते हैं—'हम जायगा', 'आप आवेगा' आदि। इस प्रकार के सब प्रयोग स्थानिक होते हैं और अच्छी हिन्दी मे नहीं चलते। हिन्दी में इनकी जगह 'हमने सोचा', 'हमने कहा', 'हम जायँगे' और 'आप आवेंगे' ही लिखे और बोले जाते है।

आज-कल हिन्दी मे संस्कृत के कुछ शब्द बिगड़े हुए रूपो में चलने लगे हैं। कभी कभी लोग संस्कृत शब्दो के ठीक रूप न जानने के कारण उन्हें मन माने रूप में लिखने लगते हैं; और उनकी देखा-देखी और भी बहुत-से लोग वे रूप ग्रहण कर लेते हैं। इससे कई प्रकार की हानियाँ होती हैं। भाषा का रूप बिगड़ता है, लेखक का अज्ञान प्रकट होता है, दूसरो को हँसने का अवसर मिलता है, आदि। इसलिए जो कुछ लिखा जाय, उसका ठीक रूप पहले से समझ लेना बहुत अच्छा है। अच्छी तरह समझे बिना या क़ेवल दूसरों की देखा-देखी बिगड़े हुए या भद्दे शब्दो का प्रयोग करना ठीक नहीं है। यहाँ हम कुछ ऐसे शब्द देते हैं जो हिन्दी में बिगड़े हुए रूपों में चल पड़े हैं; और उनके सामने उनके शुद्ध रूप भी देते हैं। इनमें से बिगड़े हुए रूप छोड़ देने चाहिएँ और सदा शुद्ध रूपों का ही प्रयोग करना चाहिए।

अशुद्ध	शुद्ध
अधीनस्थ, आधीन	अधीन
इच्छित	इष्ट
एकत्रित	एकत्र
जागृत	जागरित
दुरावस्था	दुरवस्था
नमित	नत
नर्क	नरक
परिणित	परिणत

अशुद्ध	शुद्ध
श्राप	शाप
सन्मान, सन्मुख	सम्मान, सम्मुख
सिंचन (सिंचित)	सेचन (सेचित)
सृजन	सर्जन
सेविका	सेवका
रुग्न	रुग्ण

बहुत-से लोग संस्कृत संज्ञाओं से मनमाने ढग से विशेषण बना लेते हैं। वे न तो संस्कृत शब्दों के शुद्ध रूप जानते हैं, न विशेषण बनाने के नियम। वे नहीं जानते कि 'क्रोध' से 'क्रुद्ध' 'कोप' से 'कुपित' 'क्षोभ' से 'क्षुब्ध', 'आदर' से 'आदृत', 'आचरण' से 'आचरित', 'उद्देश्य' से 'उद्दिष्ट' आदि रूप बनते हैं। वे इनकी जगह क्रोधित, कोपित, क्षोभित, आदरित, आचरणित और उद्देशित सरीखे रूप बना लेते और उन्हीं का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग हिन्दी 'उमंग' से 'उमंगित', 'अचम्भा' से 'अचम्भित' और 'सुधार' से 'सुधारित' भी बना लेते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं है।

बहुत-से लोग हिन्दी शब्दों में संस्कृत के प्रत्यय जोड़कर या संस्कृत के दूसरे नियमों के अनुसार अपने मन से नई नई भाववाचक संज्ञाएँ भी बना लेते हैं। जैसे— अचानक, उजड्ड, थिर, सुघर, कट्टर आदि शब्द हैं तो तद्भव और हिन्दी के; पर कुछ लोग इनमें भी संस्कृत का 'ता' प्रत्यय लगाकर 'अचानकता', 'थिरता', 'सुघरता', 'कट्टरता' और 'अपना' में 'त्व' प्रत्यय लगाकर 'अपनत्व' सरीखे शब्द बना लेते हैं। 'लाल' फारसी का और 'हरा' हिन्दी का शब्द है। पर कुछ लोग संस्कृत के 'कालिमा' शब्द के ढंग पर इनसे 'लालिमा' और 'हरीतिमा' शब्द बना लेते हैं जो ठीक नहीं हैं। 'महान्' से जो भाववाचक संज्ञा बनती है, उसका शुद्ध रूप है—महत्ता। पर यह बात न

जानने और शब्द को भूल से 'महान' समझने के कारण कुछ लोग 'महानता' लिखते हैं, जो अशुद्ध है।

कुछ लोग शुद्ध शब्द तो अवश्य लिखते हैं, पर व्यर्थ ही इन्हें बढ़ाकर बड़ा कर देते हैं। वे 'समृद्ध' न लिखकर 'समृद्धिशाली' और 'निष्पक्ष' न लिखकर 'पक्षपात हीन' लिखते हैं, जिससे व्यर्थ का विस्तार होता है। कभी कभी लोग भाववाचक संज्ञाओं में अपनी ओर से एक और प्रत्यय लगाकर उनके रूप बिगाड़ देते हैं। 'एकता' और 'ऐक्य' अर्थ के विचार से एक हैं, पर कुछ लोग लिखते हैं 'ऐक्यता'। होना चाहिए या तो 'सफलता' या 'साफल्य', पर कुछ लोग लिखते हैं 'साफल्यता'; और 'वैमनस्य' की जगह 'वैमनस्यता' लिख जाते हैं। इस प्रकार के दोषों से विद्यार्थियों को सदा बचना चाहिए।

कुछ लोग कई प्रकार के शब्दों को आपस में मिलाकर नये यौगिक शब्द बना लेते हैं। एक शब्द हिन्दी का और एक संस्कृत या फारसी का अथवा एक शब्द संस्कृत का और दूसरा हिन्दी या फारसी का लेकर किसी एक भाषा के नियम के अनुसार उनसे यौगिक शब्द बना लेना ठीक नहीं है। हमारे यहाँ पहले से कुछ ऐसे यौगिक शब्द चले आ रहे हैं, जिनका आधा अंग एक भाषा का है और आधा दूसरी भाषा का। जैसे हिन्दी 'समझ' में फारसी का 'दार' प्रत्यय लगाकर 'समझदार' और फारसी के 'गर्म' शब्द में हिन्दी का 'आहट' प्रत्यय लगाकर 'गरमाहट' शब्द बना लिया गया है। फारसी के 'खर्च' शब्द में हिन्दी का 'ईला' प्रत्यय लगाकर 'खरचीला' विशेषण और उसमें भी 'पन' प्रत्यय लगाकर भाववाचक संज्ञा 'खरचीलापन' बना लिया गया है। पर एक तो ऐसे शब्द बहुत थोड़े हैं; और दूसरे ये कुछ समझ-बूझकर बनाये गये हैं। तिस पर बहुत दिनों से प्रचलित रहने के कारण ये अच्छी तरह मँज भी गये हैं। पर यदि इन शब्दों की देखा-देखी हम नित्य इस तरह के नये शब्द गढ़ते रहेंगे तो

हमारी भाषा का रूप इतना बिगड़ जायगा कि वह जल्दी समझ में आने योग्य ही न रह जायगी और दूसरे लोग उसे देखकर हँसेंगे। 'बरस-गाँठ' हिन्दी का शब्द है। अब यदि हम इसमें संस्कृत का 'उत्सव' शब्द मिलाकर 'बरस-गाँठोत्सव' बना लें तो वह भद्दा ही होगा। कुछ लोग 'कुछ' और 'एक' को मिलाकर 'कुछेक' या 'हर' और 'एक' को मिलाकर 'हरेक' लिखते हैं, जो ठीक नहीं है। हिन्दी के 'अछूत' शब्द में कुछ लोगों ने संस्कृत का 'उद्धार' शब्द जोड़कर 'अछूतोद्धार' बना लिया है, जो आज-कल खूब चल गया है। 'झंडाभिवादन', 'मंजूरी-पत्र', 'सजा-प्राप्त', 'नमूनार्थ' और 'जाँचकर्त्ता' भी इसी प्रकार के शब्द हैं, जो बिना समझे-बूझे बनाये गये है, और जिनका प्रयोग भी लोग दूसरों की देखा-देखी बिना समझे-बूझे करते हैं। यदि सब लोग इसी प्रकार मनमाने ढंग से नये शब्द बनाने लगेंगे तो भाषा की दुर्दशा हो जायगी। इसलिए विद्यार्थियों को इस प्रकार के नये शब्द बनाने के फेर में नहीं पड़ना चाहिए; और पहले से बने हुए शब्दों का भी अच्छी तरह सोच समझकर ही प्रयोग करना चाहिए।

बहुत-से लोग अरबी-फारसी आदि के शब्द भी मनमाने और अशुद्ध रूप में और प्रायः अशुद्ध अर्थ में लिख जाते हैं। जैसे 'मुबारक' को 'मुबारिक' और 'सिफारिश' को 'शिफारिश'। कुछ लोग उर्दूवालों की देखा-देखी 'बरात' और 'चलान' की जगह 'बारात' और 'चालान' लिख जाते हैं, जो ठीक नहीं है। 'बरात' और 'चलान' ही शुद्ध रूप हैं। कुछ लोग विदेशी शब्दों को संस्कृत रूप देना चाहते है। ऐसे लोग 'कार्रवाई' की जगह 'कार्यवाही' शब्द का प्रयोग करते हैं; और इस बात का विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते कि इन दोनों शब्दों के अर्थ एक दूसरे से कितने दूर जा पड़ते हैं। 'कार्यवाही' का सीधा-सादा अर्थ होगा—कार्य (या उसका भार) वहन करनेवाला; और इस अर्थ का 'कार्रवाई' से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। **कभी कभी**

कुछ अशिक्षित या कम शिक्षित लोग 'पसन्द' की जगह और उसके अर्थ में 'प्रसन्न' का प्रयोग कर जाते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। लिखने से पहले सदा अच्छी तरह शब्दों के रूप, अर्थ और प्रयोग समझ लेने चाहिएँ। और यदि अपनी समझ में न आवे तो किसी बड़े से पूछ लेना चाहिए। किसी से पूछ लेना बुरा नहीं है; बुरा है बिना समझे-बूझे अशुद्ध लिखना।

३

शब्दों के अर्थ

यहाँ हम शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में पहले एक-दो मुख्य बातें बतला देना चाहते है। पहले हमे यह देखना चाहिए कि शब्द में अर्थ आता कहाँ से है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि अर्थ कभी शब्द में से निकलता नहीं है, बल्कि वह शब्द के साथ लगा दिया जाता है; या यों कहना चाहिए कि किसी तरह लग जाता अथवा मान लिया जाता है। एक ही शब्द का हमारी भाषा मे कुछ और अर्थ होता है, दूसरी भाषाओं में कुछ और। हिन्दी में 'पास' का जो अर्थ है, वह अँगरेजी में नहीं है, बल्कि कुछ और अर्थ है। यही बात हिन्दी 'बिल' और अँगरेजी 'बिल' के सम्बन्ध में भी है। फिर हम जिसे 'पुस्तक' कहते हैं, उसे उर्दू-फारसीवाले 'किताब' कहते हैं और अँगरेजीवाले 'बुक' (Book) कहते हैं। हम जिसे 'पाठशाला' कहते हैं, उसे फारसीवाले 'मदरसा' और अँगरेजीवाले 'स्कूल' कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पुस्तक, किताब और बुक या पाठशाला, मदरसा और स्कूल शब्दों में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे कोई विशेष अर्थ निकलता हो। आप कहेंगे, 'पाठ' का अर्थ है—पढना ; और 'शाला' का अर्थ है—घर। दोनो के मेल से 'पाठशाला' शब्द बना है ; और इसका अर्थ है—वह जगह, जहाँ पढ़ाई होती हो। पर यदि पूछा जाय कि 'पाठ' का अर्थ पढ़ना या 'शाला' का अर्थ घर कहाँ से आया, तो इसका यही उत्तर होगा कि ये अर्थ मान लिये गये हैं। मतलब यह कि हम कोई शब्द बना लेते हैं और उसका एक अर्थ मान लेते हैं ; और तब उस शब्द का वह अर्थ चल पड़ता है। इससे अधिक और कुछ नहीं।

पर आप पूछ सकते हैं कि एक ही शब्द के कई कई अर्थ क्यों होते हैं और कहाँ से आ जाते हैं। यह प्रश्न विचार करने योग्य है। होता यह है कि पहले कोई शब्द बनता है और उसका एक अर्थ मान लिया जाता है। फिर उस शब्द का उससे मिलते-जुलते कुछ और अर्थों में भी प्रयोग होने लगता है। जैसे, 'मुँह' शब्द लीजिए। इसका पहला अर्थ है—हमारे शरीर का वह अंग जिससे हम खाते-पीते हैं। पहले 'मुँह' शब्द इसी अर्थ में चलता था। धीरे-धीरे उसका अर्थ बढ़कर हो गया—सारा चेहरा, जिसमें आँखें, नाक, गाल, माथा, ठोढ़ी आदि सभी आ गये। फिर जब हमने देखा कि लोटे में भी बहुत कुछ उसी तरह का गोल छेद होता है और उसी छेद के द्वारा उसमें चीजें डाली और उसमें से निकाली जाती हैं, तब हम उसे भी 'लोटे का मुँह' कहने लगे। और आगे बढ़ने पर जब हमें कोई फोड़ा या फुन्सी हुई और उसमें भी एक छोटा-सा छेद हो गया, तब वह छेद भी 'फोड़े का मुँह' कहलाने लगा। शब्दों के अर्थ इसी प्रकार धीरे धीरे बढ़ते हैं। इसी लिए एक ही शब्द अलग अलग अवसरों पर अलग अलग अर्थ भी देता है। हम कहते हैं—अब हमारा शरीर नहीं चलता। यहाँ 'चलना' का अर्थ है—काम देना। फिर हम यह भी कहते हैं—मरते समय पिता ने पुत्र से कहा कि बेटा, मैं तो अब चलता हूँ। यहाँ 'चलना' का अर्थ है—मरना या यह संसार छोड़कर परलोक जाना। इसी प्रकार 'चलना' का प्रयोग और भी अनेक अर्थों में होता है।

पर शब्दों के अर्थ बढ़ने का यहीं अन्त नहीं होता। जब कई शब्द या कई तरह के शब्द एक साथ चलने लगते हैं, तब उसमें कुछ दूर दूर के अर्थ आने लगते हैं। हम कहते हैं—यह मूर्ति पत्थर की है। अर्थ यह होता है कि जिस पदार्थ से यह बनी है, वह पत्थर है। पर हम यह भी कहते हैं—उसका कलेजा पत्थर का है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि कलेजा हड्डी और मांस से नहीं, बल्कि पत्थर से बना है।

'पत्थर का कलेजा' का अर्थ है—पत्थर के समान कठोर कलेजा। अर्थात् जिस पर प्रार्थना आदि का कुछ भी प्रभाव न पड़े; अथवा जिसमें दया, प्रेम, सहानुभूति आदि (कोमलता के सूचक) गुण न हों। हम कोई कपड़ा रँगते हैं और तब देखते हैं कि उस पर अच्छी तरह रंग चढ़ा है या नहीं। उस समय हम कहते हैं कि इस पर अच्छा रंग चढ़ा है या इसपर रंग अच्छा नहीं आया। यहाँ तक तो 'रंग चढ़ना' अपने साधारण अर्थ में रहा। न 'रंग' शब्द में कोई नया अर्थ लगा, न 'चढ़ना' में। पर आगे चलकर इस 'रंग चढ़ना' में कुछ और अर्थ या भाव आ मिलते हैं। जब हम देखते हैं कि एक आदमी के विचारों का दूसरे पर बहुत प्रभाव पड़ता है, तब हम कहते हैं—'इन पर भी उनका रंग चढ़ रहा है।' ऐसे अवसर पर न तो कहीं रंग होता है, और न चढ़ने या उतरने आदि की कोई क्रिया होती है। फिर भी 'रंग चढ़ना' बोला और समझा जाता है। ऐसे अवसर पर यह माना जाता है कि इन शब्दों का साधारण अर्थ तो छूट गया और इनमें नया अर्थ आ लगा। इस तरह के नये अर्थों की गिनती मुहावरों में होने लगती है।

शब्दों के अर्थ बढ़ते तो हैं ही, कभी कभी घटते भी हैं; या यों कहना चाहिए कि नये अर्थों के आ जाने पर कुछ पुराने अर्थ छूट भी जाते हैं। उदाहरण के लिए 'स्वर्गवास' और 'गंगालाभ' सरीखे शब्द हैं। 'स्वर्ग-वास' का सीधा-सादा अर्थ है—स्वर्ग में निवास करना या रहना; और 'गंगा लाभ' का अर्थ है—गंगा को किसी प्रकार प्राप्त करना। पर ये दोनो शब्द 'मृत्यु' के सूचक हो गये है; और अब अपने मूल अर्थों में कहीं इनका प्रयोग नहीं होता। 'द्विरागमन' का पहला और शाब्दिक अर्थ है—दूसरी बार आना। पर एक बार कहीं आने के बाद जब दूसरी बार आदमी फिर वहीं आता है, तब उसे उसका 'द्विरागमन' नहीं कहते; क्योंकि यह शब्द अपना यह अर्थ छोड़कर दूसरे नये

अर्थ में चलने लगा है। और वह दूसरा नया अर्थ है—बहू का विवाह होने पर पहले-पहल पति के घर आने के बाद दूसरी बार कुछ रस्में होने पर फिर अपने पति के घर आना। 'सौभाग्यवती' का अर्थ है—बहुत अच्छे भाग्यवाली (स्त्री)। पर अब यह शब्द ऐसी स्त्रियों के लिए ही प्रयुक्त होता है, जिनके पति जीते हों अर्थात् जो सधवा हों। स्त्रियों को 'सौभाग्यवती' कहते समय हम उनके सम्बन्ध में इस बात का विचार नहीं करते कि वे सचमुच अच्छे भाग्यवाली है या किसी दृष्टि से अभागी भी हैं। और विधवा स्त्रियाँ चाहे सब तरह से अच्छे भाग्य वाली क्यों न हों, पर हम उन्हें कभी 'सौभाग्यवती' नहीं कहते फिर हिन्दी में 'कथा' का जो अर्थ है, बँगला में उसका वह अर्थ नहीं, बल्कि कुछ और अर्थ होता है। बँगला में 'बात' को ही 'कथा' कहते हैं। हिन्दी में 'चेष्टा' का अर्थ है—प्रयत्न और मुख की आकृति; पर मराठी में 'चेष्टा' का अर्थ होता है—हँसी या परिहास। तात्पर्य यह कि कभी कभी कुछ शब्द अपने पहले और वास्तविक अर्थ को छोड़कर कुछ दूसरे अर्थों में प्रचलित हो जाते हैं। ऐसे नये अर्थ उन शब्दों के 'रूढ़ अर्थ' कहलाते हैं। इसलिए जो शब्द जिस अर्थ में रूढ़ हो चुका हो, अर्थात् चल रहा हो, उसका उसी अर्थ में प्रयोग करना चाहिए; उसके मूल शाब्दिक अर्थ में नहीं करना चाहिए।

शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक बात और है। प्रायः सब शब्दों के कुछ अलग-अलग अर्थ होते हैं। बहुत-से ऐसे शब्द होते हैं जो ऊपर से देखने में बहुत-कुछ एक-से जान पड़ते हैं, फिर भी जिनके अर्थों मे थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य होता है। आप यह तो जानते ही हैं कि 'रंग' और चीज है, 'रंगत' और चीज। 'रंग' तो पदार्थवाचक संज्ञा है और 'रंगत' भाववाचक संज्ञा। इसलिए जहाँ हम 'रंग', शब्द का प्रयोग कर सकते है, वहाँ 'रंगत' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। इसी प्रकार हमे यह भी

समझ रखना चाहिए कि जहाँ हम 'रंग चढ़ना' का प्रयोग कर सकते है, वहाँ 'रंगत चढ़ना' का प्रयोग नहीं कर सकते। 'रंग चढ़ना' कुछ ऊँचे दरजे की और आगे बढ़ी हुई बात है; 'रंगत चढ़ना' उससे कुछ नीचे या हलके दरजे की या उससे कुछ घटकर बात है। जब किसी पर दूसरे का पूरा प्रभाव पड़ता है, तभी हम कहते हैं–इन पर उनका रंग चढ़ा है। पर जब थोड़ा या हलका प्रभाव पड़ता है, तब हम कहते हैं–इनपर भी उनकी रंगत चढ़ने लगी है। इसलिए हमें किसी शब्द या मुहावरे का प्रयोग करते समय अच्छी तरह यह जान लेना चाहिए कि उसका ठीक अर्थ या भाव क्या है। यदि अर्थ का पूरा विचार किये बिना शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया जायगा, तो यह निश्चय है कि उनसे ठीक अर्थ के बदले कुछ और या उलटा अर्थ निकलने लगेगा। इसलिए सदा अर्थ का ध्यान रखते हुए लिखना चाहिए।

हम जो कुछ कहते या लिखते हैं, वह इसी लिए कि सुनने या पढ़नेवाले हमारे मन का भाव समझ लें। यदि हमारी बात का भाव या अर्थ किसी की समझ में न आवे, तो हमारा बोलना या लिखना व्यर्थ हो जायगा। 'व्यर्थ' कहते ही उसे हैं, जिसका कुछ भी अर्थ न हो। इसलिए हम जो कुछ कहें या लिखें, वह ऐसा होना चाहिए कि उसका ठीक ठीक अर्थ निकले और वह सबकी समझ में आवे। उदाहरण के लिए हम कहते हैं—वे उनके साथ लड़ रहे हैं। आप इसका क्या अर्थ समझेंगे? वे उनसे लड़ रहे हैं? या वे लड़ने में उनका साथ दे रहे हैं? वाक्य के शब्दों से तो यही अर्थ निकलता है कि वे लड़ रहे हैं और उस लड़ाई में कोई दूसरे 'वे' उनके साथ मिलकर लड़ रहे हैं। पर प्रायः लोग 'वे उनसे लड़ रहे हैं' के अर्थ में 'वे उनके साथ लड़ रहे हैं' का प्रयोग करते है, जिससे पढ़नेवालों को भ्रम हो सकता है। वास्तव में 'वे उनके साथ लड़ रहे हैं' भी अर्थ के विचार से उसी प्रकार का वाक्य है, जिस प्रकार का 'वे उनके साथ जा रहे हैं'। यदि हम कहें—

अच्छी तरह अभ्यास कर लें; तब कठिन शब्दों और जटिल प्रयोग की ओर बढ़ें। इससे सहज में लिखने का अच्छा अभ्यास हो सकेगा।

अर्थ के विचार से ध्यान रखने की दूसरी बात यह है कि हमा वाक्यों में एक ही अर्थ या भाव प्रकट करनेवाले एक साथ दो शब्द आवें। जैसे—उन्होंने अपनी कविता स्वय आप पढ़कर सुनाई थी। इ में 'स्वयं' और 'आप' दो शब्द साथ ही साथ आये हैं, जिनका अ एक ही है। इसलिए इसमें 'स्वयं' व्यर्थ है। 'वे अपनी चतुरता औ चालाकी से सबको प्रसन्न रखते हैं' में 'चतुरता' और 'चालाकी' एव चीज है; इसलिए दोनो में से किसी एक शब्द का प्रयोग होन चाहिए। 'इधर आज कल यह देखने में आ रहा है' में या तो केवल 'इधर' होना चाहिए या 'आज कल'। 'सिवा आपको छोड़कर को ऐसी बात नहीं कहता' में 'सिवा' और 'छोड़कर', 'सारे देश भर मे यह बात फैल गई' में 'सारे' और 'भर', 'मैं पूरी शक्ति भर यह काम करूँगा' में 'पूरी' और 'भर', 'उसके मन की थाह का पता नहीं चलता था' में 'थाह' और 'पता', अथवा 'किसी और दूसरे आदमी को वहाँ भेजो' में 'और' और 'दूसरे' एक ही अर्थ रखते हैं; इसलिए ये सब वाक्य अर्थ की दृष्टि से ठीक नहीं हैं। 'इससे मर्यादा की सीमा टूट गई है' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'मर्यादा' में सीमा का भी बहुत कुछ भाव है। 'आप अपनी ताकत के बल पर यह काम करना चाहते हैं' में 'ताकत' यद्यपि किसी और अर्थ में और 'बल' किसी और अर्थ में आया है, फिर भी दोनों शब्दों के अर्थ बहुत-कुछ एक-से हैं, इसलिए वाक्य कुछ भद्दा जान पड़ता है। 'लेकिन (या किन्तु या पर) फिर भी मैं आपकी बात मान लूँगा' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि जो अर्थ 'लेकिन (या पर)' का है, बहुत-कुछ वही 'फिर भी' का भी है। 'मैं आज प्रातःकाल के समय वहाँ गया था' मे 'काल' और 'समय' एक ही बात के सूचक हैं; इसलिए इसमें 'के समय' व्यर्थ है।

'वे लोग परस्पर एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते थे' में 'परस्पर' और 'एक दूसरे को' एक ही अर्थ के सूचक है; इसलिए या तो केवल 'परस्पर' होना चाहिए, या केवल 'एक दूसरे को'। 'वह इस बात की व्यवस्था का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता था' में 'व्यवस्था' और 'प्रबन्ध' एक ही बात के सूचक हैं, इसलिए होना चाहिए—'वह इस बात की कोई व्यवस्था नहीं कर सकता था' या 'वह इस बात का कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता था'। 'हमारे यहाँ तरुण नव-युवकों की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध नहीं है' में 'तरुण' इसलिए व्यर्थ है कि 'नव-युवक' सदा 'तरुण' ही होते हैं, वृद्ध या बालक नहीं होते। 'कृपया आप ही यह बताने का अनुग्रह करें' में 'कृपया' का भी वही अर्थ है जो 'अनुग्रह करें' में आया है। इसमें या तो आरंभ में 'कृपया' नहीं होना चाहिए, या वाक्य का रूप होना चाहिए—'कृपया आप ही यह बतावें'। 'उन्हें अपने अहंकार का गर्व है' में 'अहंकार' और 'गर्व' एक ही अर्थ के सूचक हैं; और 'उन्हें मृत्यु-दण्ड की सजा मिली है' में 'दण्ड' और 'सजा' दोनों एक ही बात प्रकट करते हैं। 'यह एक ऐसा कार्य है जो मुझसे सम्भव नहीं हो सका है' में 'सम्भव' और 'हो सका' एक ही भाव के सूचक हैं। 'सम्भव' का अर्थ ही है 'हो सकना'। इसलिए जहाँ 'सम्भव' रक्खा जाय, वहाँ 'हो सकना' का कोई रूप न होना चाहिए; और जहाँ 'हो सकना' का कोई रूप हो, वहाँ 'सम्भव' का प्रयोग न होना चाहिए। 'यह काम क्योंकर और कैसे हुआ?' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'क्योंकर' का अर्थ भी वही है, जो 'कैसे' का है। हाँ, हम यह अवश्य कह सकते हैं—'यह काम क्यों और कैसे हुआ?' 'क्यों' से होने का कारण जानने की इच्छा प्रकट होती है, और 'कैसे' से उस होने का प्रकार। 'उन्हें व्यर्थ रुपये देने से कोई लाभ नहीं।' में 'व्यर्थ' और 'कोई लाभ नहीं' दोनों एक भाव के सूचक हैं। इसलिए या तो होना चाहिए—'उन्हे रुपये देने से कोई लाभ नहीं' या 'उन्हें रुपये

देना व्यर्थ है।' 'इसके बाद फिर यह हुआ कि···' में 'फिर' का भी वही अर्थ है, जो 'इसके बाद' का है। इसलिए या तो होना चाहिए—'इसके बाद यह हुआ कि···।' या 'फिर यह हुआ कि···।' 'थोड़ी देर बाद वे वापस लौट आये' में 'वापस' का भी वही अर्थ है जो 'लौट आये' का है। इसलिए होना चाहिए—'इसके बाद वे लौट आये' या 'इसके बाद वे वापस आये।' पर हमारी भाषा में पहले से 'लड़ाई-झगड़ा' 'धन-दौलत', 'मार पीट' और 'पान-पत्ता' सरीखे जो शब्द बोल-चाल में चले आ रहे हैं, उनके सम्बन्ध में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।

तीसरे, अर्थ की दृष्टि से इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वाक्य में शब्द एक ही मेल के आवें। 'अभी महीनों तक यह कार्य जारी रहेगा।' में 'कार्य' और 'जारी' एक मेल के शब्द नही हैं। 'कार्य' के साथ 'चलता रहेगा' का ही मेल बैठता है; हाँ काम के साथ 'जारी रहेगा' का अवश्य मेल बैठता है। '१० मनुष्य मरे और १७ आदमी घायल हुए' में 'मनुष्य' और 'आदमी' एक मेल के शब्द नहीं हैं। या तो दोनों जगह 'मनुष्य' होना चाहिए या दोनों जगह 'आदमी'। यदि दूसरी जगह 'मनुष्य' या 'आदमी' मे से कुछ भी न रहे, अर्थात् वाक्य का रूप हो—'१० आदमी मरे और १७ घायल हुए' तो भी अच्छी तरह काम चल सकता है। 'आपकी बुद्धि ठीक राह छोड़कर गलत रास्ते पर चलने लगी है' कहने से तो यही जान पड़ता है 'राह' कोई और चीज है, 'रास्ता' कोई और चीज। इसलिए दोनों जगह या तो 'राह' होना चाहिए, या रास्ता। यह भी नहीं होना चाहिए कि आरंभ में तो ऐसे शब्द आवें, जिनका अर्थ कुछ और हो; और अन्त में ऐसे शब्द आवें, जिनका पहले के शब्दों से मेल न बैठे। जैसे—'हिन्दी की ऐसी खिचड़ी बन जायगी जो किसी की समझ में न आवेगी।' पर 'खिचड़ी' समझ में आने की चीज नहीं है। हम अधिक से अधिक यह कह सकते हैं—'हिन्दी की ऐसी खिचड़ी

बन जायगी जो किसी काम की न होगी' या 'ऐसी खिचड़ी हिन्दी बन जायगी जिससे हमारा काम न चलेगा'। इसी प्रकार 'इस समस्या की बहुत अच्छी दवा उनके पास है' कहना भी ठीक नहीं है ; क्योंकि 'समस्या' की या तो मीमांसा होती है या निराकरण। 'दवा' तो रोग की होती है। यह तो वैसी ही बात हुई, जैसी—'आज-कल बाजार में बूँद भर भी कपड़ा मिलना कठिन है'; क्योकि 'बूँद' का मेल तो पानी, दूध, रस आदि के साथ ही बैठता है, कपड़े (किताब या अनाज आदि) के साथ नहीं। 'कलकत्ते में जाली नोटों की टकसाल पकड़ी गई' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि नोट प्रेसों मे छपते हैं, टकसालों में छपते, ढलते या बनते नहीं हैं। टकसालों मे तो सिक्के ढलते हैं। 'अँगरेजो ने वहाँ हत्या और धोखेबाजी का खूब प्रयोग किया' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'धोखेबाजी' के साथ तो 'प्रयोग' शब्द जैसे-तैसे चल भी सकता है, पर 'हत्या का प्रयोग किया' का कुछ भी अर्थ नहीं होता।

चौथे, अर्थ की दृष्टि से वाक्य कभी अधूरे नहीं होने चाहिएँ। 'देश की जितनी दुर्दशा हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थी।' अधूरा वाक्य है। इस वाक्य के आरम्भ मे 'आज-कल' या 'इस समय' होना चाहिए। 'संस्कृत मे जो स्थान बाल्मीकि के रामायण का है, वही तुलसी-कृत रामायण का है।' भी अधूरा वाक्य है। होना चाहिए—'वही हिन्दी में तुलसी-कृत रामायण का है'। नहीं तो यह अर्थ निकलेगा कि संस्कृत में तुलसी-कृत रामायण का भी वही स्थान है जो बाल्मीकि-कृत रामायण का है। 'तुम्हारे भाई ने कल घर पर जो किया था, वही तुम भी कर रहे हो' का अन्तिम वाक्यांश होना चाहिए—'वही आज तुम भी यहाँ कर रहे हो'।

अर्थ का बहुत कुछ सम्बन्ध वाक्य की बनावट से होता है। इस सम्बन्ध की बहुत सी-बातें आगे 'वाक्यों की बनावट' वाले प्रकरण में

बतलाई गई हैं। यहाँ हम यही बतलाना चाहते हैं कि हम एक ही बात कई तरह से कह सकते हैं; पर हर तरह से कही हुई बात का अर्थ भी कुछ अलग तरह का हो सकता है। यदि हम कहें— 'इसमें एक काम और बढ़ जाता है' तो इसका यह मतलब होता है कि वह काम बढ़ने से हम कुछ घबराते हैं या उसे व्यर्थ का समझते हैं। पर यदि हम कहें—'इसमें एक ही काम तो और बढ़ता है' तो इसका मतलब होगा कि वह बढ़नेवाले काम हमारी दृष्टि में कोई बहुत बड़ा काम नहीं है। इस प्रकार हमारे वाक्य की बनावट से ही सुनने या पढ़नेवाले समझ लेते हैं कि वह काम हमारी दृष्टि में बड़ा है या छोटा।

पाँचवें, शब्दों का अर्थ सदा प्रसंग से लगाया जाता है। 'इन पेड़ों का दाम चुका दो' का ठीक आशय तब तक नहीं निकल सकता, जब तक यह मालूम न हो कि इसका प्रयोग किस प्रसंग में हुआ है। इसमें का 'पेड़ों' शब्द वृक्षों का भी सूचक हो सकता है और 'पेड़ा' नाम की प्रसिद्ध मिठाई (बहुवचन रूप में) का भी सूचक हो सकता है। इसलिए वाक्यों का अर्थ सदा प्रसंग के अनुसार लगाया जाता है। यह नहीं होना चाहिए कि हम बात तो कहें अपने मन (हृदय) की; पर आप हमारे उस मन को समझ लें, वह चालिस सेरवाला मन, जिससे गेहूँ-चावल तौले जाते हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक बात और है। वह यह कि बहुत-से शब्द ऐसे होते हैं, जिनका एक तो मुख्य या प्रधान अर्थ होता है; पर साथ ही कुछ गौण या अप्रधान अर्थ भी होते हैं। शब्द का मुख्य अर्थ ही अधिक प्रचलित होता है, गौण अर्थ कम प्रचलित होते हैं। जब इस प्रकार कोई शब्द किसी ऐसे अकेले वाक्य में आता है, जिसकी कोई विशेष संगति नहीं होती, तब उस शब्द का वही मुख्य और अधिक प्रचलित अर्थ लिया जाता है। जैसे—यह घोड़ा अच्छा चलता है। इस वाक्य में 'घोड़ा' उस प्रसिद्ध चौपाये का ही सूचक होगा, जिस पर सवारी की जाती है या जो गाड़ियों आदि में

जोता जाता है। पर यदि हम कहें—'भूल से घोड़ा दब जाने के कारण गोली नौकर को जा लगी' तब यहाँ प्रसंग के कारण 'घोड़ा' बन्दूक या पिस्तौल के उस खटके या पुरजे का सूचक होगा, जिसे दबाने से वह चलती है और उसमें से गोली निकलती है।

कभी कभी बहुत ही थोड़े अन्तर या एक-आध शब्द के बढ़ने-घटने के कारण ही बात के अर्थ में भी बहुत अन्तर होता है। जैसे—'मैं समझता हूँ, आप वहाँ जायँगे' और 'मैं समझता हूँ कि आप वहाँ जायँगे'। दूसरे वाक्य में केवल 'कि' बढ़ने के कारण उसका अर्थ बहुत बदल गया है। पहले वाक्य का अर्थ यह है कि बोलनेवाला जो कुछ कह रहा है, पूरी दृढ़ता से कह रहा है—उसकी सत्यता में उसे कुछ भी सन्देह नहीं है। उसके कहने में निश्चय का भाव है। पर दूसरे वाक्य में केवल 'कि' लग जाने के कारण निश्चय या दृढ़ता नहीं रह गई है; वह बिलकुल साधारण कथन हो गया है। इसमें बोलनेवाला अपना एक साधारण विचार, बिना किसी निश्चय या जोर के, बिलकुल सामान्य रूप में कह रहा है।

कभी कभी ऐसा होता है कि शब्दों से जो साधारण अर्थ निकलता है, उसके सिवा उनमें कुछ और छिपा हुआ अर्थ भी रहता है, जिसपर साधारणतः सब लोगों की दृष्टि नहीं जाती। भाषा के अच्छे पारखी ही वह छिपा हुआ आशय समझ सकते हैं। साहित्य में इस प्रकार का छिपा हुआ आशय 'ध्वनि' कहलाता है। मान लीजिए, हम कहते हैं—'हमारा ही नहीं, और भी अनेक विद्वानों का यही मत है'। अब यह वाक्य हम चाहे जिस भाव से कहें, पर इससे यह छिपा हुआ आशय या ध्वनि अवश्य निकलती है कि हम भी अपनी गिनती विद्वानों में करते हैं। पर ऐसा कहना मूर्खता का लक्षण है। हाँ, यदि हम कहें—'हमारा ही नहीं, अनेक विद्वानों का भी यही मत है' तो इससे वह ध्वनि नहीं निकल सकती, जो पहले वाक्य से निकलती है। प्रायः लोग असाव-

धानी से ही इस प्रकार के वाक्य लिख या कह जाते हैं, जिनसे निकलनेवाले आशय या ध्वनि की ओर ध्यान जाने पर उन्हें दुःखी या लज्जित होना पड़ता है। ऐसे ही एक भले आदमी ने एक बार भरी सभा में अपने व्याख्यान में कह डाला था—हम सभी सज्जनों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए। अर्थात् उन्होंने अपने ही मुँह से अपने आपको भी 'सज्जन' कह लिया था! यदि हम बिना सोचे-समझे कहीं कह बैठें—'भगवान आपको सुबुद्धि दें' तो सुननेवाला यही समझेगा कि ये मुझमें सुबुद्धि का अभाव समझते हैं। इसलिए लिखने या बोलने के समय हमें अपनी बातों के अर्थ का तो ध्यान रखना ही चाहिए, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उनसे कोई ऐसा-वैसा आशय या ध्वनि न निकले।

शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में ध्यान रखने की दो बातें और हैं। हम पहले बता चुके हैं कि हम कहीं से कोई शब्द लेते हैं और अपनी आवश्यकता के अनुसार उसके अर्थ घटा-बढ़ा लेते हैं। उदाहरण के लिए 'दौड़ना' शब्द है। इसका सीधा सादा और मुख्य अर्थ है—बहुत जल्दी जल्दी और बड़े बड़े डग बढ़ाते हुए आगे की ओर चलना। हम स्वयं तो अपने पैरों से दौड़ते ही हैं, पर यह भी कहते हैं—'रेल दौड़ती है' और 'मोटर दौड़ा दो।'। रेल या मोटर के पैर तो होते ही नहीं; फिर भी उनके सम्बन्ध में हम 'दौड़ना' का प्रयोग करते हैं। यही नहीं, हमारी आँखें भी दौड़ती हैं; और मन भी दौड़ता है। ऐसे अवसरों पर 'दौड़ना' का प्रयोग करते समय हम इस बात का विचार नहीं करते कि आँखों या मन के न पैर होते हैं, न पहिये। जब इस प्रकार अर्थ के क्षेत्र में आगे बढ़ते हुए हम कुछ और दूर पहुँचते हैं, तब हम देखते हैं कि कुछ शब्दों के साधारण से भिन्न और बिलकुल नये या स्वतन्त्र अर्थ भी बन जाते हैं। बस यहीं से मुहावरों का क्षेत्र आरम्भ होता है। हम कहते हैं—'आज-कल रिश्वत का बाजार गरम है' और 'उनका सारा जोश ठण्ढा हो गया'। यहाँ 'गरम' होने और 'ठण्ढा'

रे का कुछ और ही अर्थ हो जाता है, जो गरमी या ठण्ढक से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। हम कहते हैं—'तुमने हमारे सारे परिश्रम पानी फेर दिया' और 'उनकी आशाओं पर पानी फिर गया'। स्तव में ऐसे अवसरों पर न तो परिश्रम या आशाओं से पानी का ई सम्बन्ध या संयोग होता है और न साधारण अवस्था में ानी फिरना' का कोई अर्थ होता है। 'पानी फिरना' एक विशेष ार का प्रयोग है; और उसमें एक ऐसा विशेष अर्थ है, जो न तो ानी' के साधारण अर्थ से सम्बन्ध रखता है, न 'फिरना' से जिसका ई लगाव है। चाहे किसी की नानी दस-बीस बरस पहले ही क्यों मर चुकी हो, पर हम आज भी बात पड़ने पर कहते हैं—यह सुनते उसकी नानी मर गई। हम इस बात का विचार नहीं करते कि सकी नानी बहुत पहले मर चुकी है या अभी तक जीती है। पर ानी मरना' में हमने एक विशेष अर्थ लगा लिया है। और जब हमें ह अर्थ या भाव सूचित करना होता है, तब हम 'नानी मरना' का योग करते हैं। इसी प्रकार जब हम कहते हैं—'वह सिर पर पैर रख- र भागा' तब हम यह नहीं सोचते कि आदमी अपने सिर पर अपने र कैसे रख सकता है। और यदि मान लिया जाय कि वह किसी कार रख भी ले, तो फिर भाग कैसे सकता है! 'सिर पर पैर रखकर ागना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है—बहुत जल्दी कहीं से भागना। ऑखें दिखाना, दाँत पीसना, कान पकड़ना, हाथ उठाना, पेट फूलना जैसे—कुछ कहने के लिए हमारा पेट फूल रहा है) आदि सैकड़ों-हजारों मुहावरे हैं, जिनका कुछ विशेष अर्थ होता है।

कुछ मुहावरे ऐसे भी होते हैं, जो यों देखने में तो बिलकुल एक-से जान पड़ते हैं, पर जिनके अर्थों या भावों में बहुत अन्तर होता है। उदाहरण के लिए हम यहाँ तीन वाक्य देते हैं—(१) बात की बात मे सारा मैदान खाली हो गया। (२) वहाँ ढेर के ढेर कपड़े पड़े

थे। और (३) तुमने मेरी किताब की किताब रख ली, और उलटे मुझे ही चोर बतलाते हो। इनमें 'बात की बात', 'ढेर के ढेर' और 'किताब की किताब' ये तीन तरह के मुहावरे हैं, जो शब्दों के क्रम और पद की बनावट के विचार से देखने में बिलकुल एक-से जान पड़ते हैं; पर इन तीनों के अर्थों और भावों में बहुत अन्तर है। 'बात की बात में' का अर्थ है—बहुत थोड़े समय में। इसमें बहुत कमी का भाव है। 'ढेर के ढेर' का अर्थ है—बहुत से ढेर; और इसमें बहुतायत या अधिकता का भाव है। और 'किताब की किताब' का अर्थ है—किताब ही। इसमें न पहलेवाला कमी का ही भाव है, न दूसरा अधिकता का ही; बल्कि उसी 'किताब' के सम्बन्ध में निश्चय का भाव है; और उसपर अधिक जोर दिया गया है। इसलिए मुहावरों में शब्दों के साधारण अर्थ, रूप या क्रम का विचार छोड़कर हमें उनके विशेष अर्थ का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसे मुहावरों के अर्थ पहले अच्छी तरह समझ लेने चाहिएँ; और तब वहीं उनका प्रयोग करना चाहिए, जहाँ वे अपना ठीक अर्थ दें।

कुछ अवस्थाओं में शब्दों के कुछ अर्थ उनके वास्तविक अर्थों से कुछ दूर तो जा ही पड़ते हैं, पर कुछ अवस्थाओं में उनके साधारण से बिलकुल उलटे या बिलकुल अलग प्रकार के भी अर्थ होते हैं। जब हम अपनी दुकान बन्द करते हैं, तब कहते हैं—'हम दुकान बढ़ा रहे हैं'। दीया बुझाने को भी कहीं कहीं 'दीया बढ़ाना' कहते हैं। चूड़ियाँ स्त्रियों के सौभाग्य का चिह्न मानी जाती हैं; इसलिए उनके सम्बन्ध में भी टूटना-तोड़ना या उतरना-उतारना आदि क्रियाओं का प्रयोग न करके वे कहती हैं—'यह चूड़ी बढ़ (टूट) गई' या 'ये चूड़ियाँ बढ़ाकर (उतारकर) नई पहनो'। शाब्दिक अर्थ में न तो उस समय दूकान ही बढ़ती है, न दीया ही और न चूड़ियाँ ही। होता

यही है कि हम कोई अनिष्ट, अशुभ या अप्रिय बात ऐसे रूप में कहना चाहते हैं, जिसमें वह हमें अनिष्ट, अशुभ या अप्रिय न जान पड़े। इसी लिए कहीं कहीं लोग होली और चूल्हे के साथ 'जलाना' क्रिया का प्रयोग न करके 'मगलना' क्रिया का प्रयोग करते हैं। जैसे—'होली मंगल गई', 'चूल्हा मंगल रहा है' आदि। ऐसे प्रयोग इसलिए मंगल-भाषित कहलाते हैं कि हम इनके द्वारा अमंगल की जगह मंगल का भाव सूचित करनेवाले शब्द रखते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में शब्दो के वास्तविक अर्थ एक ओर रह जाते हैं; और उनमें ऐसे नये अर्थ आ लगते हैं, जो बिलकुल अलग प्रकार के या उलटे होते हैं। ऐसे अवसरों पर भी प्राथमिक या नित्य के चलते हुए अर्थ नहीं लगाये जाते, बल्कि कुछ विशेष अर्थ ही लगाये जाते हैं।

बहुत कुछ इसी से मिलते-जुलते कुछ और ऐसे अवसर होते हैं, जिनमें शब्दों के वास्तविक अर्थ से कुछ उलटा अर्थ निकलता है। ऊपर हम 'ध्वनि' के बारे में कुछ बातें बतला चुके हैं। अब हम जिस प्रसंग की बात कह रहे हैं, उसमें 'ध्वनि' का भी तत्त्व रहता है और 'मंगल-भाषित' की भी कुछ छाया रहती है। इसे व्यंग्य या ताना कहते हैं। इसमें बात तो सदा कुछ या बहुत अच्छे ढंग से कही जाती है, पर अर्थ सदा बुरा या दूषित ही होता है। प्रायः किसी मूर्ख लड़के की मूर्खता-भरी बात सुनकर या मूर्खता का कोई कार्य देखकर लोग कहते हैं—'वाह! तुम बड़े पंडित हो' या 'यही तो पंडितों के लक्षण हैं'। ऐसी बातों में व्यंग्य होता है; और इनका आशय यही होता है कि जिसके सम्बन्ध मे ऐसी बातें कही जाती हैं, वह मूर्ख है। यदि हम किसी के विषय में कहें—'उसने अपने पिता के मुँह पर कालिख पोत दी' तो यहाँ 'कालिख पोतना' मुहावरे का साधारण अर्थ होगा; और उसका आशय यही होगा कि उसने ऐसा काम किया, जिससे उसके

पिता की भी बदनामी हुई। पर यही बात इस रूप में भी कही जा सकती है—उसने अपने पिता के मुँह पर खूब चन्दन पोता। इसमें के 'चन्दन पोतना' मुहावरे का भी वही अर्थ है, जो 'कालिख पोतना' का है; पर 'चन्दन पोतना' में व्यंग्य है, जो 'कालिख पोतना' में नहीं है। ऐसे अवसरों पर भी शब्दों के वास्तविक या मूल अर्थों की जगह सदा उलटे या बुरे अर्थ ही लगाये जाते हैं।

४

शब्दों का चुनाव

बोलने और लिखने के समय हमें सबसे पहले ठीक ठीक शब्द चुनने की आवश्यकता होती है। हमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि हम अपने वाक्यों में वही शब्द लावें, जो हमारे मन के भाव ठीक तरह से प्रकट कर सकें। हमें चाहिए तो कुरता, पर यदि हम दुकानदार से माँगे धोती, तो हमें धोती ही मिलेगी। दुकानदार यह नहीं समझेगा कि हम वास्तव में कुरता चाहते हैं। यदि हम किसी को परिचय तो कराना चाहें गौ का, पर नाम ले घोड़े का और कह चलें कि उसके सिर पर दो सींग होते हैं, तो सुननेवाले हमें मूर्ख ही समझेंगे। हम कहते हैं—वह चलता है। अब इस वाक्य में से 'चलता' शब्द निकालकर और उसकी जगह दौड़ता, उछलता, कूदता, रेंगता, फिसलता, खिसकता, उड़ता आदि शब्द अलग अलग लगाकर देखिये कि उसके अर्थों में कितना अधिक अन्तर पड़ जाता है। इसलिए हमें प्रसंग के अनुसार ठीक ठीक शब्दों का ही व्यवहार करना चाहिए। हमें संज्ञाएँ ही नहीं, विशेषण, क्रियाएँ और विभक्तियाँ भी ऐसी ही चुननी चाहिएँ, जो सुनने या पढ़नेवाले पर हमारे मन का ठीक ठीक अभिप्राय प्रकट कर सकें। जो शब्द सामने आ जाय, उसी से काम चलता करने की आदत नहीं डालनी चाहिए। हर शब्द खूब सोच-समझकर लेना चाहिए; और उसके अर्थ का पूरी तरह से विचार करके उसे वाक्य में स्थान देना चाहिए।

हम कहते हैं—'एक गाँव में एक भला आदमी रहता था और

एक चोर।' इससे सुननेवाले यही समझेंगे कि भला आदमी अलग रहता था और चोर अलग—उन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं था। पर यदि किसी के दो लड़के हों और उनमें से एक भला आदमी हो और दूसरा दुष्ट, तो हम कहेंगे—उनका एक लड़का भला आदमी और दूसरा दुष्ट था। इस वाक्य में 'दूसरा' शब्द यह सूचित करता है कि उन दोनों में किसी प्रकार का सम्बन्ध था। यदि हम कहें—'आज पानवालों ने भी हड़ताल की है' तो इसका साधारण अर्थ होगा। इससे यही समझा जायगा कि जिस तरह और बहुत-से दुकानदारो मे हड़ताल की है, उसी तरह पानवालों ने भी की है। पर यदि हम कहें—'आज पानवालों तक ने हड़ताल की है' तो इसका अर्थ यह होगा कि और हड़तालों के दिन पानवाले अपनी दुकानें वन्द नहीं करते थे; पर आज उन लोगों ने भी हड़ताल की है। पहले वाक्य में भी 'भी' के कारण जोर तो है, पर उतना नहीं, जितना दूसरे वाक्य में 'तक' के प्रयोग से आया है। ठीक यही वात—'आप हमारी वात भी नहीं सुनते' और 'आप हमारी बात तक नहीं सुनते' के सम्बन्ध में भी है। अर्थ या भाव में इस प्रकार का अन्तर और जोर शब्दों के ठीक चुनाव से ही आता है।

शब्द चुनते समय इस वात का तो ध्यान रखना ही पड़ता है कि वे ठीक अर्थ या भाव प्रकट करनेवाले हों; इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि वे सहज हो और सुननेवाले झट उनका अर्थ समझ लें। हमारे शब्द जितने ही कठिन होंगे, उनका अर्थ समझने में सुननेवालों को भी उतनी ही कठिनता होगी। यदि हम कहें—'आज हमारा पेट भरा ह' तो हमारी बात समझने में किसी को कुछ भी कठिनता न होगी। पर यदि हम कहें—'आज हमारा उदर परिपूर्ण है' तो हमारी वात कुछ ही लोगो की समझ में आवेगी, सब लोगों की समझ में न आवेगी। यदि हम कहे—'क्या तुम्हें यह विदित है कि मैं इस कार्य में क्यों रत हुआ' अथवा 'आज मैं आप के सम्मुख (या समक्ष)

अपना निवेदन उपस्थित करना चाहता हूँ' तो यह ऊँचे दरजे की हिन्दी तो अवश्य होगी, पर सबके समझने योग्य न होगी। अधिक लोग तो तभी समझेंगे, जब हम कहेंगे—'क्या तुम जानते हो कि मैंने यह काम क्यों हाथ में लिया?' अथवा 'आज मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ'। 'वह आज प्रस्थित होनेवाला है' की जगह 'वह आज चलने (या जाने) वाला है' और 'हमारी नौका भ्रमर गत हो गई' की जगह 'हमारी नाव भँवर में पड़ गई' कहना अधिक अच्छा है। 'श्रवणेन्द्रिय' की जगह 'कान', 'समीप' की जगह 'पास', 'शिखर' की जगह 'चोटी', 'भ्रमण' की जगह 'घूमना', 'परिचालन' की जगह 'चलाना' और 'अल्प समय पश्चात्' की जगह 'कुछ समय बीतने पर' कहना अच्छा भी है और सहज भी। सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि कठिन शब्दों के प्रयोग से बनावट झलकती है; और सहज शब्द स्वाभाविकता के सूचक होते हैं।

हम पहले बतला चुके हैं कि शब्द कितने प्रकार के होते हैं। उनमें दो मुख्य भेद तत्सम और तद्भव हैं। जब हम हिन्दी लिखने बैठें, तब जहाँ तक हो सके, हमे तद्भव शब्द ही काम में लाने चाहिएँ। तत्सम शब्द भी व्यर्थ नहीं हैं; पर वे समझ-बूझकर और ठीक ठिकाने पर ही काम में लाये जाने चाहिएँ। विद्यार्थियों को पहले ऐसी ही भाषा लिखने का अभ्यास करना चाहिए, जिसमें तद्भव शब्द अधिक हों। आगे चलकर बड़े होने पर और अच्छी विद्या या ज्ञान प्राप्त होने पर कठिन तत्सम शब्द भी काम में लाये जा सकते है। पर बिलकुल आरम्भ में ऐसा करना ठीक नहीं है।

एक बात और है। हमें लिखते या बोलते समय सबसे अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि हमारी बातें पढ़ने या सुननेवाले कौन लोग हैं। हम बात तो करे अपने किसी साथी या छोटे से, पर भाषा ऐसी बोलें जो जल्दी बड़ो की भी समझ मे न आवे, तो लोग

हम पर हँसेंगे ही । इसी प्रकार हम बात तो करें किसी बहुत ऊँचे विषय की, पर अपने शब्द रक्खें बिलकुल साधारण, तो फल यही होगा कि हम अपने सब भाव या विचार ठीक तरह से प्रकट न कर सकेंगे । इसलिए हमें सुनने या पढ़नेवालों का भी ध्यान रखना पड़ता है और विषय का भी । पर विद्यार्थियों को प्रायः सहज शब्दों से ही काम लेना चाहिए । बड़ों के ढंग पर बोलने या लिखने का काम बाद के लिए छोड़ रखना चाहिए ।

पर हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भाषा में सहज शब्द तो होते हैं कम और कठिन शब्द होते हैं अधिक । अच्छी भाषा वही होती है, जिसमें बहुत-से शब्द हों और सब शब्दों के अलग अलग अर्थ या भाव हों । पर ऐसे सब शब्द और उनके सब अर्थ सब लोग नहीं जानते; इसलिए उन शब्दों में से भी चुनाव करते समय दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है । एक तो यह कि वे शब्द अधिक से अधिक लोगों की समझ में आने के योग्य हों; और दूसरे यह कि वे ठीक ठीक भाव या अर्थ प्रकट कर सकते हों । ये दोनों बातें ऐसी हैं, जो कभी भूलनी नहीं चाहिएँ ।

हर शब्द का अपना एक विशेष अर्थ या भाव होता है । कभी कभी कुछ शब्द कुछ विशेष अर्थ में भी चल जाते हैं । जैसे 'प्राणी' और 'जानवर' । यदि यों देखा जाय तो प्राण और जान दोनों एक चीज हैं । 'प्राणी' उसे कहते हैं, जिसमें प्राण हों; और 'जानवर' उसे कहते हैं, जिसमें जान हो । इस प्रकार के अर्थ के विचार से 'प्राणी' और 'जानवर' एक ही चीज हैं या हो सकते हैं । फिर भी हम सब जानवरों को तो 'प्राणी' कह सकते हैं, पर सब प्राणियों को 'जानवर' नहीं कह सकते । यदि कहें तो हम एक लड़ाई मोल लेंगे; 'जानवर' मुख्यतः पशु के अर्थ में ही प्रचलित है ; और 'प्राणी' में पशु के सिवा मनुष्य भी आ जाते हैं ।

'एक दिन किसी ने बादशाह से चुगली खाई कि ये गाना बहुत अच्छा जानते हैं' में 'चुगली' शब्द ठीक नहीं है। कारण यह है कि चुगली या तो ऐसी झूठ बात को कहते हैं, जो किसी को हानि पहुँचाने के लिए किसी दूसरे से कही गई हो ; या वह किसी के दोष या बुरी बात के सम्बन्ध में होती है। यदि हम कोई बुरा काम करें और आप हमें हानि पहुँचाने के विचार से वह बात किसी दूसरे से कहें, तो वह 'चुगली' कहलावेगी। या यदि हम कोई बुरा काम न करते हों और आप व्यर्थ ही लोगों से कहें कि इसने ऐसा बुरा काम किया है, तो वह भी 'चुगली' कहलावेगी, बल्कि 'झूठी चुगली' कहलावेगी। पर 'बहुत अच्छा गाना जानना' न तो कोई बुरी बात है ; और न किसी से उसका जिक्र करने से गाना जाननेवाले की कोई हानि हो सकती है। इसी लिए किसी के सम्बन्ध में यह कहना कि 'ये गाना बहुत अच्छा जानते हैं' कोई चुगली या शिकायत नहीं है। इसलिए होना चाहिए—'एक दिन किसी ने बादशाह से कह दिया……।' 'इस प्रकार उसने अपनी सब कमजोरी पूरी कर ली' में 'पूरी' का प्रयोग ठीक नहीं है। 'पूरी' तो कमी होती है ; 'कमजोरी' तो 'दूर' की जाती है। 'आज सिवा पास के वहाँ कोई नहीं जा सकता' में 'सिवा' का प्रयोग अशुद्ध है। इसकी जगह 'बिना' होना चाहिए। 'उनका दावा था कि हम न तो वाइसराय से बात करेंगे, न भारत-मन्त्री से।' में 'दावा' शब्द का प्रयोग इसलिए ठीक नहीं है कि दावा सदा ऐसी बात का होता है जो हुई हो, की जा चुकी हो या की जाने को हो। जो बात न हुई हो, न की गई हो या न की जाने को हो, उसके सम्बन्ध में 'दावा' का प्रयोग अशुद्ध है। हम यह तो कह सकते हैं— 'हमारा दावा है कि हम यह काम कर दिखलावेंगे।' पर यह नहीं कह सकते— 'हमारा दावा है कि हम यह काम नहीं करेंगे।' और इन दोनों वाक्यों में अन्तर है 'हाँ' और 'न' का—सकारात्मक और नकारात्मक का।

'पशुओं के झुण्ड चारों ओर पानी की चाह में घूम रहे थे' में 'चाह' की जगह खोज' या 'तलाश' रखना अधिक उत्तम होगा। किसी वस्तु की चाह तो केवल 'होती' है ; 'चाह' में घूमना-फिरना आदि बातें नहीं होतीं ; हाँ 'चाह' के कारण ये सब बातें हो सकती हैं। 'उस पतिव्रता स्त्री को छूने का उत्साह कौन करेगा?' में 'उत्साह' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है। वास्तव में इसकी जगह 'साहस' होना चाहिए। 'यह दुःख उसे और भी पीड़ित करने लगा' में 'पीड़ित' शब्द ठीक नहीं है। दुःख सदा मनुष्य को दुःखी ही करता है ; पीड़ित करना तो 'पीड़ा' या 'अत्याचार' आदि का काम है। 'उनके दल की जो धाक जमी थी, उसके लिए वे ही उत्तरदायी थे' में 'उत्तरदायी' का प्रयोग ठीक नहीं है। आदमी उत्तरदायी तो उसी काम के लिए होता है, जिससे कोई खराबी हो सकती हो, जिसका फल बुरा हो सकता हो या जिसकी गिनती कर्त्तव्य में हो। पर 'धाक जमना' इस तरह की कोई बात नहीं है। 'काश्मीर की समस्याओं की आँखों-देखी कहानी' ऐसा वाक्य है, जो शब्दों के चुनाव के विचार से बहुत ही भद्दा और निरर्थक है। एक तो 'समस्याओं' की 'कहानी' नहीं होती ; दूसरे, 'कहानी' कभी 'आँखों-देखी' नहीं होती, वह सदा सुनी, पढ़ी या गढ़ी हुई होती है ; 'आँखों-देखी' तो 'घटना' होती है। या तो होना चाहिए—'काश्मीर की समस्याओं का विचार' या 'काश्मीर की घटनाओं का आँखों-देखा हाल'।

'राम नाम कहकर दशरथ ने अपनी जान गँवाई' में 'कहकर' और 'गँवाई' दोनों ठीक नहीं है। इन शब्दों के कारण वाक्य का यह अर्थ हो जाता है कि राम का नाम लेना मानों कोई अपराध हो ; और उस अपराध का दण्ड दशरथ को यह मिला कि उन्हें जान से हाथ धोना पड़ा। फिर गँवाने या खोने में दो भाव मुख्य होते हैं—एक तो व्यर्थता का और दूसरा अनजानपन का। अर्थात् जब कोई चीज हमारे

अनजान में और व्यर्थ हमारे अधिकार से निकल जाय, तब हम कहते हैं—हमने वह चीज गँवा या खो दी। पर दशरथ ने तो जान-बूझकर प्राण दिये थे; और राम के लिए प्राण दिये थे; इसलिए इसे हम गँवाना या खोना नहीं कह सकते। होना चाहिए था—राम-राम कहते कहते दशरथ ने अपनी जान दे दी (या प्राण दे दिये)। इसी कारण यह कहना भी ठीक नहीं है—बाढ़ में दस हजार मनुष्यो ने प्राण खोये (या गँवाये) होना चाहिए—बाढ़ में दस हजार मनुष्यों के प्राण गये।

लिखने के समय इस बात का भी विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि वाक्यों में व्यर्थ के शब्द न आने पावें। जिन वाक्यो में व्यर्थ के या फालतू शब्द होते हैं, वे भद्दे तो होते ही हैं; कभी कभी उन व्यर्थ के शब्दों के कारण ही वे अशुद्ध भी हो जाते हैं। वाक्यों में ऐसे व्यर्थ के शब्द या तो अज्ञान के कारण आ जाते हैं या असावधानी के कारण। कभी कभी शब्दो के अर्थ पर ठीक ध्यान न रखने के कारण भी वाक्य में व्यर्थ के शब्द आ जाते हैं। जरा-सी सावधानी से वाक्य व्यर्थ शब्दों से बचाये जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए, यदि हम कहें—'ठंढी बरफ' या 'गरम आग' तो इनमें 'ठंढी' और 'गरम' दोनो व्यर्थ हैं। बरफ सदा ठंढी होती है, कभी गरम नही होती; और आग सदा गरम होती है, कभी ठंढी नहीं होती। 'वह विलाप करके रोने लगा' में विलाप' और 'रोना' एक साथ रखना ठीक नहीं है। या तो होना चाहिए—वह विलाप करने लगा' या 'वह रोने लगा'। यदि हम कहें—'अच्छी तरह पाठ याद करना ही पास होने की सबसे बड़ी कुंजी है' तो इसमे 'सबसे बड़ी' व्यर्थ है। कारण यह है कि हर चीज की कुंजी एक ही होती है, दो, चार या दस नहीं होतीं; और न छोटी, बड़ी, मँझोली आदि कई प्रकार की होती हैं। यही बात 'एक बात बड़ी सीमा तक' के सम्बन्ध

तो आप बैठे रहें और या चले जायँ' के सम्बन्ध में भी है। इसमें भी 'और' व्यर्थ ही नहीं, अशुद्ध भी है। होना चाहिए—'या तो आप बैठे रहें, या चले जायँ'। इसके सिवा एक और तरह से लोग 'और' का व्यर्थ प्रयोग करते हैं। जैसे—'मेरे कपड़े, पुस्तकें और चिट्ठियाँ आदि सब यहाँ भेज दीजिए'। इस वाक्य में 'और' इसलिए व्यर्थ है कि इसमें 'चिट्ठियाँ' के बाद 'आदि' आया है। साधारण नियम यह है कि जब बहुत-सी चीजों (या आदमियों आदि) के नाम गिनाये जाते है, तब अन्तिम चीज (या आदमी) के नाम के पहले 'और' रक्खा जाता है। जैसे—'धोती, कुरता और टोपी' या 'राम, कृष्ण और गोपाल'। पर यदि गिनाये जानेवाले नामों (या शब्दों) के अन्त में 'आदि' रहे, तो अन्तिम शब्द (या नाम) के पहले 'और' रखने की आवश्यकता नहीं होती। कारण यह है कि 'आदि' का अर्थ है—इसी तरह और भी। इसी लिए यह कहना तो ठीक है—मेरे कपड़े, पुस्तकें और चिट्ठियाँ सब यहाँ भेज दीजिए। पर यह कहना ठीक नहीं है—मेरे कपड़े, पुस्तकें और चिट्ठियाँ आदि सब यहाँ भेज दीजिए। होना चाहिए—मेरे कपड़े, पुस्तकें, चिट्ठियाँ आदि सब यहाँ भेज दीजिए।

५

शब्दों का स्थान

वाक्य में हर शब्द का अपना अलग स्थान होता है। जिस वाक्य में सब शब्द अपने ठीक स्थान पर होते हैं, वही शुद्ध भी होता है और सुन्दर भी। 'लड़का जाता अपने घर है' या 'लड़का घर है अपने जाता' या 'है लड़का जाता अपने घर' कविता में भले ही ठीक बैठें, पर गद्य में इस तरह के वाक्य अच्छे नहीं माने जाते। गद्य में तो 'लड़का अपने घर जाता है' कहना ही ठीक होगा। हम सदा इसी प्रकार कहते हैं—'वह कल सवेरे जायगा' या 'आप परसों मुझसे मिलिएगा।' कभी यह नहीं कहते—'जायगा सवेरे वह कल' या 'मिलिएगा मुझसे आप परसों।' मतलब यह कि गद्य में वाक्य बनाने के जो नियम हैं, उनका सदा ध्यान रखना चाहिए, और उन्हीं नियमों के अनुसार वाक्य बनाने चाहिएँ।

यदि गद्य में वाक्य बनाने के नियमों का ध्यान न रक्खा जाय तो भाषा में कई तरह के दोष आ जाते हैं। पहली बात तो यह है कि वाक्य व्याकरण के विचार से अशुद्ध हो जाता है। 'पुस्तक अच्छी बहुत है' अशुद्ध है; और 'पुस्तक बहुत अच्छी है' शुद्ध है। 'मोहन याद पाठ कर अपना रहा है' अशुद्ध है; और 'मोहन अपना पाठ याद कर रहा है' शुद्ध है। 'आप जहाँ तक हो सके, इस बात का प्रयत्न करें।' और 'मैंने जब तक सम्भव था, उन्हें कष्ट नहीं दिया' के बदले 'जहाँ तक

हो सके, आप इस बात का प्रयत्न करें।' और 'जब तक सम्भव था, तब तक मैंने उन्हें कष्ट नहीं दिया।' कहना ही अधिक ठीक है। 'वह अभी कहीं बैठ पाया नहीं है' से 'वह अभी कहीं बैठ नहीं पाया है' और 'यदि वे जो कुछ हुआ है, उसे ठीक न समझें' से 'जो कुछ हुआ है, उसे यदि वे ठीक न समझें' कहना कहीं अधिक सुन्दर है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण स्वयं सोचे और बनाये जा सकते है।

वाक्य मे शब्द यदि अपने ठीक स्थान पर न हो तो कुछ अवसरों पर उनका अर्थ भी बदल जाता है। हम जिन अवसरो पर 'जी हाँ' कहते हैं, उन सभी अवसरों पर 'हाँ जी' नहीं कह सकते। और जिन अवसरों पर 'हाँ जी' कहते हैं, उन सभी अवसरों पर 'जी हाँ' नहीं कह सकते। दोनों के कुछ अलग अलग भाव हैं और अलग अलग अवसरों पर उनका प्रयोग होता है। किसी बड़े के बुलाने पर हम प्रायः 'जी हाँ' कहते हैं; और बराबरवालों से या अपने से छोटों से बात चीत करते समय प्रायः कहते हैं—हाँ जी, जरा यह तो बतलाओ। यदि हम कहें—'हमें तो अभी उनके दोष ही दोष दिखाई देते हैं' तो इसका आशय यह होगा कि और लोगो को भले ही गुण दिखाई देते हों, पर हमें दोष ही दिखाई देते हैं। पर यदि हम कहें—'हमें अभी तो उनके दोष ही दोष दिखाई देते हैं' तो इसका आशय यह हो जायगा कि आगे चलकर किसी समय हमें उनके गुण भी दिखाई दे सकते हैं। अर्थात् पहले वाक्य में जो जोर 'हमें' पर था, वह दूसरे वाक्य में उस पर से हटकर 'अभी' पर आ गया। और यदि हम कहें—'हमें अभी उनके दोष ही दोष तो दिखाई देते हैं' तो वही जोर 'दोष ही दोष' पर आ जायगा; और वाक्य का आशय यह हो जायगा कि अभी हमें उनमें दोषों के सिवा और कुछ नहीं दिखाई देता।

'यह काम नहीं हो सकता' और 'यह काम हो नहीं सकता' या 'महाराज ही हैं' और 'महाराज हैं ही' में जो अन्तर है, वह

स्पष्ट है। यही बात 'वह भी मुझे जानते हैं' और 'वह मुझे भी जानते हैं' के सम्बन्ध में भी है। 'वे सुख के ही सपने देखा करते हैं' और 'वे सुख के सपने ही देखा करते हैं' में भी बहुत अन्तर है। इनमें से पहले वाक्य का भाव यह है कि वे दिन-रात सुख पाने का ही विचार करते रहते हैं—सुख के सिवा और किसी बात का उन्हें ध्यान ही नहीं आता। पर दूसरे वाक्य का भाव यह है कि वे सुखी होने का विचार तो करते रहते हैं, पर कोई ऐसा काम या उपाय नहीं करते, जिससे वे सुखी हो सकें। इसी प्रकार 'हम सत्य पर परदा नहीं डालना चाहते' बिलकुल साधारण कथन है। पर 'हम सत्य पर परदा डालना नहीं चाहते' का यह आशय हो जायगा कि हो सकता है कि हम सत्य पर से परदा उठाना चाहते हों। और इसी लिए ऐसे अवसरों पर ही 'डालना नहीं चाहते' का प्रयोग ठीक होगा। 'इस महीने में वर्षा होगी' बिलकुल साधारण कथन है। इस वाक्य के शब्दों से जो अर्थ निकलता है, उसके सिवा और कोई अर्थ या भाव इसमें नहीं है। पर 'वर्षा इस महीने में होगी' में एक विशेष भाव है। ऐसा वाक्य वहीं आवेगा, जहाँ हमें यह बतलाना होगा कि इसके पहले या बाद के महीनो में वर्षा नहीं होगी; अर्थात् जहाँ हमें किसी महीने को और महीनो से अलग करके दिखलाना होगा। 'केवल अर्थ के बल पर' में 'अर्थ' पर जोर है; और 'अर्थ के बल पर ही' में 'बल' पर। 'एक दिन, बुड्ढे होने पर वे कूएँ पर बैठे थे' के बदले 'बुड्ढे होने पर एक दिन वे कूएँ पर बैठे थे' या 'बुढ़ापे मे एक दिन वे कूएँ पर बैठे थे' कहना ही अधिक ठीक होगा। 'एक दिन बुड्ढे होने पर……' का तो अर्थ यही होगा कि मनुष्य एक दिन मे भी बुड्ढा हो सकता है; और इसी तरह के किसी दिन, जब वे (उस दिन) बुड्ढे हो गये, तब कूएँ पर बैठे थे।

'बेंतो से मारे हुए लड़कों की मृत्यु' का अर्थ यह होगा कि जो

लड़के बेंतों के डर या मार से भाग गये थे, उनकी मृत्यु हुई। पर यदि हम यह बतलाना चाहते हों कि जो लड़के भाग गये थे, उन पर बेंतों की ऐसी मार पड़ी थी कि वे मर गये, तो हमें कहना होगा—भागे हुए लड़कों की बेंतो से मृत्यु हुई। 'बम्बई में सुभाष-दिवस पर गोलियाँ चलीं' का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि सुभाष-दिवस भी आदमियों की भीड़ की तरह की कोई चीज होगी। पर यदि हम कहें—'सुभाष-दिवस पर बम्बई में गोलियाँ चलीं' तो इसका और किसी तरह का अर्थ नहीं लगाया जा सकेगा।

'लाठियों की मार से मोहन के हाथ और सिर टूट गये' कहना इसलिए अच्छा नहीं जान पड़ता कि मोहन के हाथ तो दो अवश्य थे, पर सिर दो नहीं थे—एक ही था। इसलिए 'मोहन का सिर और हाथ टूट गये' कहना अधिक अच्छा है। 'आप इसी काम के लिए विशेषतः बम्बई से आये थे' का सीधा-सादा अर्थ यही होगा कि आप आये तो और भी बहुत-सी जगहों से थे, पर विशेषतः बम्बई से आये थे। शुद्ध रूप होगा—'आप विशेषतः इसी काम के लिए बम्बई से आये थे।' 'फीता न होने के कारण एक मोजा तना हुआ था और दूसरा खिसककर जूते पर आ गया था' से तो यही अर्थ निकलेगा कि फीता न होने के कारण ही एक मोजा तना हुआ था। पर बात बिलकुल उलटी है। एक मोजे पर तो फीता बँधा था, जिससे वह तना हुआ था। हाँ दूसरा मोजा, फीता न होने के कारण, खिसककर जूते पर आ गया था।

'आपने एक छात्रों की सभा में भाषण किया' कहना ठीक नहीं है। ठीक रूप होगा—आपने छात्रों की एक सभा में भाषण किया। यदि हम इससे कुछ और आगे बढ़कर विचार करें तो हमें पता चलेगा कि 'आपने दस छात्रों की सभा में भाषण किया'

कहना एक दूसरी दृष्टि से बिलकुल ठीक होगा। एक ऐसी सभा हुई, जिसमें दस छात्र आये। उस सभा में आपने भाषण किया। यह तो बिलकुल ठीक है। पर यदि आपने ऐसी दस सभाओं में भाषण किये, जिन सब में छात्र ही छात्र थे, तब हम कहेंगे—आपने छात्रों की दस सभाओं में भाषण किये। 'वे अच्छी कविता करते हैं' और 'वे कविता अच्छी करते हैं' में भी बहुत अन्तर है। पहला वाक्य बिलकुल साधारण है। कोई कविता करता है और अच्छी कविता करता है, तो हम कहते हैं—वे अच्छी कविता करते हैं। पर 'वे कविता अच्छी करते हैं' का भाव यह होगा कि उनके और काम अच्छे नहीं होते; हाँ, कविता वे अवश्य अच्छी करते हैं। 'कोई समय निश्चित हो' और 'कोई निश्चित समय हो' में भी बहुत अन्तर है। हम कोई काम करना चाहते हैं, पर उसके करने का कोई समय निश्चित नहीं करते। ऐसी अवस्था में कहा जा सकता है—इसके लिए कोई समय निश्चित होना चाहिए। इसमें 'निश्चित' का सम्बन्ध 'होना' क्रिया से है। पर जब हम कहते हैं—'इस काम के लिए कोई निश्चित समय होना चाहिए' तब हम समय के 'निश्चित' होने पर अधिक जोर देते हैं। अर्थात् हम उसे यों ही संयोग के भरोसे नहीं छोड़ देना चाहते, बल्कि इस बात पर जोर देते हैं कि उसके लिए कोई 'समय' निश्चित हो जाना चाहिए। ऐसी अवस्था में 'निश्चित' का सम्बन्ध 'समय' से होता है।

यदि हम कहें—'वे जंगलियों की तरह आपस में लड़ते हैं' तो इसका अर्थ यह होगा कि जिस तरह जंगली लोग आपस में लड़ते हैं, उसी तरह वे भी आपस में लड़ते हैं। पर यदि हम कहें—'वे आपस में जंगलियों की तरह लड़ते हैं' तो इसका अर्थ यह होगा कि वे आपस में उसी तरह लड़ते हैं, जिस तरह जंगली लोग लड़ते हैं। पहले वाक्य में जंगलियों की लड़ाई के ढंग का भाव मुख्य है; और दूसरे वाक्य में उनके आपस में लड़ने का। फिर इससे यह अभिप्राय भी

निकल सकता है कि सम्भव है, दूसरों के साथ वे सभ्यों की तरह लड़ते हों, जंगलियों की तरह न लड़ते हों।

'वह कभी-कभी उनका रक्त चूसने के लिए आ जाता है' और 'वह उनका रक्त चूसने के लिए कभी-कभी आ जाता है' में कुछ अन्तर है। पहले वाक्य में यह भाव है कि वह कभी-कभी तो उनका रक्त चूसने के लिए आ जाता है, पर हो सकता है कि कभी कभी वह और किसी प्रकार से उन्हें कष्ट देने के लिए अथवा और किसी उद्देश्य से भी आता या आ सकता हो। उसमें 'रक्त चूसने' का भाव मुख्य नहीं है, बल्कि उसके कभी-कभी आने का भाव मुख्य है। दूसरे वाक्य में 'रक्त चूसने' का भाव मुख्य है। पर यदि हम कहें—'वह उनका रक्त कभी कभी चूसने के लिए आ जाता है' तो इसका आशय यह होगा कि वह आ तो जाता है; पर जब तक रहता है, तब तक बराबर उनका रक्त नहीं चूसा करता, केवल कभी कभी चूसता है।

'अन्त में यदि आप आज्ञा दें तो मैं इतना और निवेदन करूँगा कि......।' का अर्थ यही होगा कि यदि आप (इस समय नहीं) अन्त में आज्ञा दें, तो मैं........। पर वाक्य में आगे चलकर जो 'इतना और' आया है, उससे सूचित होता है कि बोलनेवाला पहले से कुछ कहता आ रहा है; और इसी बीच में वह यह भी कहता है—यदि आप मुझे आज्ञा दें, तो........। इस दृष्टि से यह वाक्य ठीक नहीं है। इसका रूप होना चाहिए—यदि आप आज्ञा दें तो अन्त में मैं इतना और निवेदन करूँगा कि......। इसी प्रकार 'आप कुछ दिनों तक और दिल्ली में रहेंगे' न कहकर 'आप और कुछ दिनों तक दिल्ली में रहेंगे' कहना चाहिए। और 'यह बात हृदय से सम्भव है, वे न मानें' से 'सम्भव है, वे यह बात हृदय से न मानें' कहना कहीं अच्छा है।

'वहाँ उसे निपुणिका नाम की रानी की दूसरी सखी मिली' का आशय यह होगा कि रानियाँ कई थीं ; और उनमें से निपुणिका नाम की रानी की दूसरी सखी उसे मिली। पर जहाँ हमें यह वाक्य लिखा हुआ मिला था, वहाँ यह आशय ठीक नहीं बैठता था। वास्तव में दूसरी सखी का नाम निपुणिका था। इसलिए होना चाहिए था—वहाँ उसे रानी की निपुणिका नाम की दूसरी सखी मिली। 'मुझे दुःख है कि आज मैं एक बरात में जा रहा हूँ, इसलिए आपसे न मिल सकूँगा।' का अर्थ यह होगा कि मुझे आपसे न मिल सकने का नहीं, बल्कि बरात में जाने का ही दुःख है! इसलिए होना चाहिए—मैं आज एक बरात में जा रहा हूँ, इसलिए दुःख (बल्कि खेद) है कि आपसे न मिल सकूँगा।

प्रायः शब्दों के स्थान के परिवर्तन के कारण ही वाक्यों का जोर घट या बढ़ जाता है। जैसे—'अपने जिन मित्रों के साथ मैं घूमता था, वे मुझे अच्छी अच्छी बातें बतलाते थे।' बिलकुल साधारण कथन है। इसमें किसी विशेष शब्द, व्यक्ति या कार्य पर कोई जोर नहीं है। पर यदि हम कहें—'मेरे वे मित्र, जिनके साथ मैं घूमता था, मुझे अच्छी अच्छी बातें बतलाते थे।' तो 'वे मित्र' पर जोर आ जाता है। यही बात 'जो पुस्तक मैंने पढ़ी थी, और 'जिस जगह मैंने उसे पाया था' सरीखे वाक्यों के सम्बन्ध में भी है। यदि इनके रूप बदलकर हम कहें—'वह पुस्तक, जो मैंने पढ़ी थी' और 'वह जगह, जहाँ मैंने उसे पाया था' तो इन वाक्यों में 'पुस्तक' और 'जगह' पर ज्यादा जोर आ जायगा। 'आपको रुपया किस काम के लिए चाहिए?' साधारण कथन है। पर 'आपको किस काम के लिए रुपया चाहिए?' में 'काम' पर कुछ जोर आ जाता है। और 'रुपया आपको किस काम के लिए चाहिए?' में 'रुपया' पर जोर आ जाता है। 'सभी नये और पुराने

लेखक' बिलकुल साधारण कथन है। पर 'नये और पुराने सभी लेखक' कहने से 'सभी' पर कुछ ज्यादा जोर आ जाता है।

'उसने अपना काम जल्दी खतम कर दिया' और 'अपना काम उसने जल्दी खतम कर दिया' में से पहला वाक्य साधारण है। उसका भाव यह है कि औरों की अपेक्षा उसने अपना काम जल्दी खतम किया। पर दूसरे वाक्य का भाव यह है कि शायद उसके पास कुछ और लोगों के काम भी थे। उन सब कामों में से अपना काम तो उसने जल्दी खतम कर दिया; पर दूसरो के काम मे देर लगाई। 'सिपाही नई वर्दियो में अच्छे जान पड़ते थे' और 'नई वर्दियों में सिपाही अच्छे जान पड़ते थे' में से पहले वाक्य का आशय यह है कि सिपाही यों तो अच्छे थे ही, पर नई वर्दियों में और भी अच्छे जान पड़ते थे। पर दूसरे वाक्य का आशय यह है कि सिपाही साधारणतः अच्छे नहीं थे और पुरानी वर्दियों में भद्दे दिखाई देते थे। पर जब उन्होने नई वर्दियाँ पहन लीं, तब, उन वर्दियों के कारण ही, वे अच्छे जान पड़ने लगे।

प्रायः हमें किसी से कोई बात पूछनी पड़ती है—कोई प्रश्न करना होता है। जिन वाक्यो में प्रश्न का भाव होता है, उन्हें प्रश्नात्मक वाक्य कहते हैं। हिन्दी में यह नियम है कि ऐसे वाक्यों में 'क्या' सदा पहले आता है। जैसे—'क्या आप वहाँ गये थे?' 'क्या आप उनसे मिले थे?' 'क्या आप भोजन कर चुके?' आदि। ऐसे वाक्यों में कुछ लोग भूल से 'क्या' पहले न रखकर अन्त में रख देते हैं। जैसे—'आप वहाँ गये थे क्या?' 'आप उनसे मिले थे क्या?' 'आप भोजन कर चुके क्या?' आदि। पर इस तरह के वाक्य ठीक नहीं समझे जाते। इसलिए ऐसे वाक्यों में 'क्या' सदा पहले ही रहना चाहिए। 'तुम कह सकोगे क्या कि वह क्यों नहीं आया?' से 'क्या तुम कह सकते हो कि वह क्यो नहीं आया?' कहीं अधिक सुन्दर है।

हाँ, यदि वाक्य हलका करना चाहें तो लिखने में ऐसे वाक्यों में से 'क्या' बिलकुल निकाला भी जा सकता है। ऐसे वाक्यों के अन्त में जो प्रश्न-चिह्न होगा, वही 'क्या' का काम दे जायगा।

पर जो बात 'क्या' के सम्बन्ध में कही गई है, वही 'क्यों' और 'कैसे' के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। पहली बात तो यह है कि 'क्यों' और 'कैसे' प्रायः वाक्य के आरम्भ में नहीं आते, बल्कि बीच में या और कहीं आते हैं। 'तुम वहाँ क्यों गये थे ?' और 'वह उसे अपने साथ क्यों नहीं लाया ?' ही कहना ठीक है। 'क्यों तुम वहाँ गये थे ?' और 'क्यों वह उसे अपने साथ नहीं लाया ?' सरीखे वाक्य साधारण कथन की अवस्था में ठीक नहीं होते। हाँ, यदि 'क्यों' पर ही हमें ज्यादा जोर देना हो, तो बात दूसरी है। यही बात 'आप यहाँ कैसे आये ?' और 'यह काम कैसे होगा ?' के सम्बन्ध मे भी है।

अपरिचित होते है। इसका फल यह होता है कि वे भी, अपना ढंग ठीक तरह से न जानने के कारण, बहुत-कुछ अँगरेजी ढंग से बोलने और लिखने लगते हैं। वे सीधी तरह से यह नहीं कहते या लिखते—"मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप यहाँ आवें' या 'मैं आपसे कहता हूँ कि......।' बल्कि कहते या लिखते हैं—"मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप यहाँ आवे' या 'कहूँगा कि......' या 'मैं आपसे कहना चाहूँगा कि......।' आदि। हमारे यहाँ के कहने के ढंग के अनुसार तो 'प्रार्थना करूँगा', 'कहूँगा' और 'कहना चाहूँगा' भविष्यत् काल के ही सूचक हो सकते हैं, वर्त्तमान काल के नहीं। इस प्रकार की अँगरेजी ढंग की बोल-चाल और लिखावटों से हमारी भाषा का स्वरूप दिन-पर-दिन बहुत कुछ बिगड़ता जा रहा है। नये विद्यार्थियों को इस विषय में बहुत सावधान रहना चाहिए, और दूसरों की देखा-देखी अपनी भाषा का स्वरूप बिगाड़ना नहीं चाहिए।

एक उदाहरण लीजिए। 'उस स्त्री ने कहा कि उसका पति उसे बहुत मारता है और उसे भय है कि उसके साथ रहने में उसके प्राण न बचेंगे।' इस वाक्य का ढंग हिन्दी नहीं, बल्कि बिलकुल अँगरेजी है। इस अँगरेजी ढंग के कारण ही साधारण हिन्दी जाननेवाले जल्दी इसका ठीक-ठीक अर्थ न समझ सकेंगे। तिस पर इस वाक्य में जो उसे, उसका और उसकी छः-सात बार आये हैं, उनके कारण वाक्यों में जो भद्दापन आ गया है, वह अलग। यही बात हिन्दी ढंग से स्पष्ट रूप में और बहुत अच्छी तरह इस प्रकार कही जा सकती है—'उस स्त्री ने कहा कि मेरा पति मुझे बहुत मारता है; और मुझे भय है कि उसके साथ रहने में मेरे प्राण न बचेंगे'। अब इन दोनों वाक्यों का मिलान करके आप स्वयं समझ सकेंगे कि अँगरेजी और हिन्दी ढंग में क्या अन्तर है; और दोनों में से कौन-सा ढंग अच्छा और अपनाने योग्य है।

कभी कभी इस तरह के अँगरेजी ढंग से लिखे हुए वाक्यो का बिलकुल उलटा अर्थ भी निकलता है। एक बार एक समाचारपत्र में छपा था—नेहरू जी ने बिहारियों से कहा कि मुसलमानों को छूने से पहले वे उन्हें मार डालें। इस वाक्य में अँगरेजी ढंग के कारण जो 'उन्हें' आया है, उसी से वाक्य का अर्थ बिलकुल उलट गया है। वास्तव में नेहरू जी का कहना यह था कि मुसलमानों के शरीर पर हाथ लगाने के पहले आप मुझे मार डालें। पर वाक्य का अर्थ लोग यही समझेंगे कि नेहरू जी ने मुसलमानों को मार डालने के लिए कहा था, जो बिलकुल गलत बात है। यदि यही बात हिन्दी ढंग से कही गई होती, तो कभी ऐसा उलटा अर्थ न निकलता।

प्रायः लोग लिखते हैं—वे इस विषय में बहुत स्वार्थ लेते हैं। पर इस 'स्वार्थ लेते हैं' का क्या अर्थ है? कुछ भी नहीं। हम यह तो कह सकते हैं—'हमारा इस विषय में स्वार्थ है' या 'सब लोग अपने स्वार्थ का ध्यान रखते हैं'। पर किसी विषय में 'स्वार्थ लेना' हमारा हिन्दी ढंग नहीं है; और इसी लिए हिन्दी में इसका कुछ अर्थ भी नहीं है। यही बात 'भाग लेना' के सम्बन्ध में भी है। 'हम इस कार्य में भाग लेते हैं' सरीखे प्रयोग भी हिन्दी ढंग के न होने के कारण कुछ भी अर्थ नहीं रखते। किसी सम्पत्ति में हमारा भाग (अंश) हो सकता है; और हम सब प्रकार से अपना वह भाग ले सकते हैं। पर 'कार्य में भाग लेना' बिलकुल अँगरेजी ढंग का अनुकरण है। इसी प्रकार का एक और प्रयोग 'माँग करना' है। 'उन्होने शत्रुओ से हथियारों को रख देने की माँग की' और 'हम लोग अपने अधिकारो की माँग करते हैं' ऐसे प्रयोग हैं, जिनमें सीधी-सी बात दूसरो के ढंग से कुछ घुमाव-फिराव से कही गई है। हिन्दी ढंग है—'उन्होंने शत्रुओं से हथियार रख देने के लिए कहा' और 'हम लोग अपने अधिकार माँगते हैं'।

'इस दिशा में बहुत कुछ कार्य हो चुका है' से 'इस विषय में (या इस सम्बन्ध में) बहुत कुछ कार्य हो चुका है' लिखना कहीं अच्छा है। 'सैनिकों को इन सब बातों से ऊपर रहकर अपना काम करना चाहिए।' भी कहने का अँगरेजी ढंग है। हिन्दी ढंग के अनुसार यहाँ 'ऊपर' की जगह 'अलग' होना चाहिए। 'हमें सन्देह है कि आप अपना काम अच्छी तरह कर सकेंगे' कहने का ऐसा अँगरेजी ढंग है, जिससे केवल हिन्दी जाननेवाले कुछ भी अर्थ नहीं समझ सकते। हिन्दीवाले तो तभी समझेंगे, जब कहा जायगा—आपके अच्छी तरह यह काम कर सकने में हमें सन्देह है। अथवा—हमें सन्देह है कि आप यह काम अच्छी तरह कर सकेंगे या नहीं। पर बहुत-से लोग सीधा प्रकार और अपना ढंग छोड़कर, और टेढ़े प्रकार तथा दूसरों के ढंग से अपनी बातें कहकर अपनी हँसी भी कराते हैं और अपनी भाषा का स्वरूप भी बिगड़ते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। विद्यार्थियों को आरम्भ से ही इस प्रकार के भद्दे प्रयोगों से बचना चाहिए।

प्रायः लोग लिखते हैं—'न केवल यही, बल्कि वे वहाँ से चले भी आये।' यह भी हिन्दी ढंग नहीं है। हिन्दी ढंग है—यही नहीं, बल्कि वे वहाँ से चले भी आये। इसमें ध्यान रखने की एक बात और है। वह यह कि 'केवल' के साथ 'यही' रखना भी ठीक नहीं है। 'केवल यह' तक तो ठीक है या खाली 'यही' भी ठीक है; पर 'केवल यही' इसलिए ठीक नहीं है कि 'यही' का अर्थ है—केवल यह। 'यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा, ऐसी हमें आशा है।' भी हिन्दी ढंग नहीं है। हिन्दी ढंग तो तभी होगा, जब लिखा या कहा जायगा—हमें आशा है कि यह कार्य उन्हीं के हाथों पूरा होगा। 'आप कल वहाँ जायँगे, ऐसा मैं समझता हूँ।' भी हिन्दी ढंग नहीं है। हिन्दी ढंग से कहा जायगा—मैं समझता हूँ कि आप कल वहाँ जायँगे। ... के उपद्रव को लेकर महात्मा गान्धी अनशन का विचार कर

रहे हैं' कहने का बँगला या मराठी ढंग है, हिन्दी ढंग नहीं है। हिन्दी ढंग से बंगाल के उपद्रव के कारण (या बंगाल के उपद्रव से दुःखी होकर) महात्मा गान्धी अनशन का विचार कर रहे हैं।' कहना ही ठीक होगा। 'वह समय अपना काम निकालने का होने से मैं चुप रहा' के बदले हिन्दी में इस रूप में लिखना ठीक होगा—वह समय अपना काम निकालने का था, इसलिए मैं चुप रहा। 'हम क्या लिखें, कैसे लिखें, यह तुरन्त निश्चित हो जाय, यदि हम यह समझ लें कि हम किसके लिए लिखते हैं।' के बदले हमें लिखना चाहिए—यदि हम यह समझ लें कि हम किसके लिए लिखते हैं, तो यह तुरंत निश्चित हो जाय कि हम क्या लिखें और कैसे लिखें।

अब तक वाक्यों के जितने उदाहरण दिये गये हैं, वे सब प्रायः ऐसे हैं, जो अँगरेजी ढंग से कोई बात सोचने के कारण हमारे यहाँ चल पड़े हैं। अँगरेजी की कृपा से और भी कई तरह के प्रयोग हिन्दी में चलने लगे हैं, जो वास्तव में हिन्दी-ढंग के नहीं हैं। हम सीधी तरह से 'जल्दी ही' 'शीघ्र ही' आदि न लिखकर लिख जाते हैं—निकट भविष्य में ऐसा होनेवाला है। यह बिलकुल अँगरेजी ढंग है। 'हम उनका नाम आदर के साथ लेते हैं', 'वे धैर्य के साथ अपना काम कर रहे हैं', 'आपने यह काम योग्यता के साथ किया है' और 'उन्होंने सरलता के साथ उत्तर दिया' सरीखे वाक्यों में 'के साथ' भी उर्दू और अँगरेजी ढंग के अनुकरण के कारण ही आया है। इसकी जगह हम अपने ढंग से सीधे-सादे 'पूर्वक' शब्द से काम चला सकते हैं; और कह सकते हैं—'हम उनका नाम आदरपूर्वक लेते हैं' आदि। 'यह बीमारी देश में लड़ाई के द्वारा फैली थी' 'लड़ाई के द्वारा लोगों ने खूब धन कमाया' 'दो एक सज्जनों द्वारा यह कहा गया' सरीखे वाक्यों में 'के द्वारा' भी अँगरेजी ढंग का अनुकरण होने के कारण बुरा तो है ही, कई कारणों से अशुद्ध भी है। ऐसे वाक्य हमें इस प्रकार लिखने

चाहिएँ—'देश में यह बीमारी लड़ाई के कारण फैली थी', 'लड़ाई में लोगों ने खूब धन कमाया' और 'एक दो सज्जनों ने यह कहा'। 'हम वहाँ नहीं गये थे, क्योंकि उन्होंने हमें नहीं बुलाया था।' भी बिलकुल अँगरेजी ढंग का वाक्य है। हिन्दी ढंग से यह बात इस रूप में लिखी जानी चाहिए—उन्होंने हमें नहीं बुलाया था, इसलिए हम वहाँ नहीं गये थे। 'उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया गया' भी अँगरेजी ढंग का वाक्य है। हिन्दी ढंग का वाक्य होगा—उनपर मुकदमा चलाया गया।

जिस प्रकार अलग-अलग प्रान्तों में कुछ ऐसे शब्द चलते हैं, जो सब जगह नहीं बोले और समझे जाते, उसी प्रकार अलग अलग प्रांतों और वहाँ की भाषाओं में कुछ ऐसे प्रयोग भी होते हैं, जो अच्छी हिन्दी में नहीं चलते। ऐसे प्रयोग 'स्थानिक' कहलाते हैं, और इनमें से बहुतेरे हमारे हिन्दी ढंग के विरुद्ध होते हैं। पंजाबवाले प्रायः बोलते और लिखते हैं—'हमने वहाँ जाना है', 'हमने अभी खाना है' आदि। अच्छी हिन्दी में यही बातें इस रूप में कही जाती हैं—'हमें वहाँ जाना है' और 'हमें अभी खाना है' आदि। प्रायः बिहार के लोग लिखते और बोलते हैं—'जो सज्जन उसे पाये हों...।' 'जब पंजाब के मुसलमान वहाँ प्रवेश किये थे', 'वे कोई स्कूल नहीं खोले थे' और 'तुम भगवान से अच्छा भाग्य पाये हो'। हिन्दी ढंग से ये वाक्य इस प्रकार लिखे जायँगे—'जिस सज्जन को वह मिला हो...'। 'जब पंजाब के मुसलमानों ने वहाँ प्रवेश किया था', 'उन्होंने कोई स्कूल नहीं खोला था' और 'तुमने भगवान से अच्छा भाग्य पाया है'। 'ऐसा होना चाहता था' और 'आपको वहाँ जाना चाहता था' सरीखे प्रयोग भी स्थानिक हैं। इनमें 'चाहता' की जगह 'चाहिए' होना चाहिए। 'शाम' का अर्थ है—संध्या। पर पूरबवाले प्रायः लिखते हैं—वे दोनों शाम टहलने जाते हैं। होना चाहिए—वे दोनों समय टहलने जाते हैं।

उर्दूवाले लिखते हैं—'पेश्तर इसके कि कोई हँसे, हम खुद हँस पड़ते हैं।', 'बगैर किसी की मदद के यह नहीं हो सकता।', 'बजाय इसके कि आप यहाँ आवें, मैं ही आपके यहाँ आ जाऊँगा।', 'बेहतर हो कि आप किताब दे दें।' आदि। उनकी देखा-देखी हिन्दी में भी कुछ लोग लिख जाते हैं—'पूर्व इसके कि कोई हँसे, हम स्वयं हँस पड़ते है।', 'बिना किसी की सहायता के यह काम नहीं हो सकता।', 'इसके बदले कि आप यहाँ आवें, मैं ही आपके यहाँ आ जाऊँगा।', 'अच्छा हो कि आप पुस्तक दे दें।' आदि। पर ये भी हिन्दी ढंग नहीं हैं। इनके बदले होना चाहिए—'किसी के हँसने के पहले हम स्वयं हँस पड़ते हैं।', 'किसी की सहायता के बिना यह काम नहीं हो सकता।', 'आपके यहाँ आने के बदले मैं ही आपके यहाँ आ जाऊँगा।' और 'आप पुस्तक दे दें तो अच्छा हो।' 'मै यह काम किया चाहता हूँ' और 'वे वहाँ जाया चाहते हैं' भी उर्दू बोल-चाल का ढंग है। हिन्दी ढंग है—'मै यह काम करना चाहता हूँ' और 'वे वहाँ जाना चाहते हैं।'

७

वाक्यों की बनावट

जब हम अपने मन का कोई भाव प्रकट करने के लिए कुछ शब्द अपने व्याकरण के नियमों के अनुसार किसी विशेष क्रम से लगाकर कहते या लिखते हैं, तब उन शब्दों का समूह 'वाक्य' कहलाता है। वाक्य में कोई एक पूरा भाव या विचार रहता है। यदि भाव या विचार पूरा न हो तो वाक्य भी पूरा नहीं होता—अधूरा रहता है। वाक्य के सम्बन्ध में एक साधारण नियम यह है कि उसमें कम से कम एक कर्त्ता और एक क्रिया होती है। यदि हम कहें—'गौ का बच्चा' तो यह वाक्य नहीं होगा ; क्योंकि इसमें कोई क्रिया नहीं है। शब्दों के ऐसे समूह को व्याकरण में 'पद' कहते हैं। इसी प्रकार 'राम का भाई', 'पुस्तक के पन्ने' और 'घर की दीवार' सरीखे शब्द-समूह भी पद ही हैं ; क्योंकि न तो इन शब्दों से कोई पूरा विचार प्रकट होता है, न इनमें कोई क्रिया है। इसी प्रकार 'चर रहा है', 'आया है', 'फट गये', 'गिर गई' सरीखी खाली क्रियाएँ भी 'वाक्य' नहीं कहलातीं। वाक्य तो तभी होगा, जब हम कहेंगे—'गौ का बच्चा घास चर रहा है।', 'राम का भाई आया है।', 'पुस्तक के पन्ने फट गये।', 'घर की दीवार गिर गई।' आदि। इन रूपों में एक भाव या विचार भी पूरी तरह से आ गया है और कर्त्ता के साथ क्रिया भी लगी है। पर यहाँ इस बात

का ध्यान रहे कि यदि हम कहें—'वे लोग चलकर' तब तो यह वाक्य नहीं होगा। पर यदि हम खाली कहें—'चलो' या 'बैठो' तो यह वाक्य हो जायगा ; क्योंकि इसका आशय है—'तुम चलो' या 'तुम बैठो'। इसी लिए ऐसे शब्द या शब्दों के ऐसे समूह भी 'वाक्य' कहलाते हैं।

ये तो हैं वाक्य की सीधी-सादी आवश्यकताएँ। पर इनके सिवा वाक्य का रूप ठीक करने के लिए और भी कई बातें आवश्यक होती हैं। उनमें से पहली आवश्यक बात है—वाक्य में शब्दों का क्रम ठीक होना। 'राम का भाई आया है' तभी वाक्य कहलावेगा, जब उसके सब शब्द इसी क्रम से रहेंगे ; और उसका ठीक ठीक अर्थ भी तभी लोगों की समझ में आवेगा, जब शब्दों का यह क्रम रहेगा। यदि हम कहें—'भाई है का आया राम' या 'राम है भाई आया का' तो न तो इनकी गिनती वाक्यों में होगी, न इनका अर्थ जल्दी किसी की समझ में आवेगा। इसलिए वाक्यों में शब्दों का क्रम ठीक रखना सबसे अधिक आवश्यक होता है। जिन वाक्यों में शब्दों का क्रम ठीक नहीं होता, वे अशुद्ध भी होते हैं और भद्दे भी। इसके सिवा कुछ अवसरों पर या तो उनका कुछ अर्थ ही नहीं होता ; या यदि कुछ अर्थ निकले भी तो वास्तविक अर्थ से इतना अलग होता है कि समझनेवाला कुछ का कुछ समझ सकता है। हो सकता है कि कुछ अवसरों पर अशुद्ध वाक्य का बिलकुल उलटा अर्थ भी निकले।

किसी वाक्य का बिलकुल उलटा अर्थ निकलना तो बहुत ही बुरा है ; पर कुछ का कुछ अर्थ निकलना भी कम बुरा नहीं है। कुछ अवसर ऐसे भी होते हैं, जिनमें साधारणतः अर्थ तो ठीक निकलता है, पर खींच-तानकर या और किसी प्रकार का प्रयत्न करके कुछ और अर्थ भी लगाया जा सकता है। जिन वाक्यों की बनावट ऐसी होती है, वे भी दूषित वाक्यों में गिने जाते हैं। इसलिए वाक्य सदा ऐसे होने चाहिएँ, जिनका एक ही और ठीक अर्थ निकले। उस एक और ठीक

अर्थ के सिवा और किसी तरह का अर्थ निकलने की जगह ही उसमें न रहे। वाक्य के ठीक होने के लिए यह बात भी कम आवश्यक नहीं है।

मान लीजिए कि हम कोई ऐसा वाक्य बनाते हैं, जिसका अर्थ तो ठीक निकलता है, पर जिसे शुद्ध और सुन्दर रूप देने के लिए उसके एक-दो शब्दों मे कुछ हेर-फेर करने या उनका क्रम बदलकर उन्हें आगे-पीछे करने की आवश्यकता होती है। ऐसे वाक्य शिथिल या ढीले कहलाते हैं और इनकी गिनती भी दूषित वाक्यों में होती है। इसलिए वाक्यों का रूप खूब गठा हुआ और चुस्त होना भी बहुत आवश्यक है। जो वाक्य इन सब बातो का पूरा पूरा ध्यान रखकर बनाये जाते हैं, वही अच्छे, सुन्दर और शुद्ध होते हैं।

वाक्य छोटे भी होते है और बड़े भी; और इन दोनों के बीच के अर्थात् मझोले भी होते हैं। व्याकरण में छोटे वाक्यों को साधारण वाकय कहते हैं। इनमें दो या अधिक से अधिक तीन बातें होती हैं। एक तो कोई काम करनेवाला, जिसे कर्त्ता कहते हैं; और दूसरा उसका कोई काम, जिसे क्रिया कहते हैं। जैसे—वह दौड़ता है। इसमें 'वह' कर्त्ता है और 'दौड़ता है' क्रिया है। पर जब हम कहते हैं—'वह पुस्तक पढ़ता है' तब इसमें 'वह' कर्त्ता और 'पढ़ता है' क्रिया के बीच मे एक तीसरी चीज 'पुस्तक' आ जाती है, जिसे कर्म कहते हैं। पर इस 'पुस्तक' कर्म का भी 'पढ़ता है' क्रिया से ही सम्बन्ध है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की किसी चीज या कर्म की जरूरत सकर्मक क्रियाओ के साथ ही होती है, अकर्मक क्रियाओं के साथ इसके लिए स्थान नहीं होता। वाक्यो की बनावट के प्रसंग मे कर्त्ता को 'उद्देश्य' और क्रिया को 'विधेय' कहते हैं। इन दोनो के सिवा उसमें जो और बातें या शब्द होते है, वे या तो उद्देश्य से सम्बन्ध रखते हैं या विधेय से। ऊपर के वाक्य में 'पुस्तक' विधेय से सम्बन्ध रखनेवाली चीज है।

इससे कुछ और बड़े वाक्य, जिन्हें हम मझोले वाक्य कह सकते हैं, व्याकरण में 'मिश्र वाक्य' कहलाते हैं। जैसे—हम तो यही चाहते हैं कि आप अच्छी बातें सीखें। इसमें विधेय के बाद भी वाक्य का एक और टुकड़ा या पद लगा है। अथवा—जो विद्वान् होता है, उसका सभी आदर करते हैं। इसमें उद्देश्य से पहले वाक्य का एक टुकड़ा या पद लगा है। तात्पर्य यह कि जिस वाक्य में प्रधान बात तो एक ही हो, पर उसके साथ एक-दो और छोटी-मोटी बाते भी लगी हों, वह 'मिश्र वाक्य' कहलाता है।

पर कभी कभी इससे भी कुछ और बड़े वाक्य होते हैं, जिनमें प्रधान बाते भी एक से अधिक होती हैं और हर प्रधान बात के साथ एक या कई छोटी मोटी बाते लगी रहती हैं या हो सकती हैं। जैसे—'मैं तो सो गया और वह बैठा हुआ अपना पाठ याद करता रहा।' या 'पहले तुम सब लोगों से बहुत लड़ा करते थे, पर अब धीरे धीरे तुम्हारी यह आदत छूट रही है।' या 'आप तो जा ही रहे हैं, साथ में इन्हें भी लिये जा रहे हैं।' व्याकरण में ऐसे वाक्य 'संयुक्त वाक्य' कहलाते हैं।

वाक्य जितने छोटे होते है, उनमें भूलों के लिए भी उतना ही कम स्थान होता है। जैसे—'सन्ध्या को मोहन घर आया। वह थका हुआ था। आते ही चौकी पर लेट गया। उसका छोटा भाई उसे पंखा झलने लगा। थोड़ी देर में उसे नींद आ गई।' आदि। ऐसे छोटे और साधारण वाक्यों में शायद ही कभी किसी से भूल होती हो। ऐसे वाक्य लोग सहज में समझ लेते है और उनपर उनका प्रभाव भी अच्छा पड़ता है। पर मिश्र और संयुक्त वाक्यो में भूलों के लिए अधिक स्थान रहता है। विशेषतः संयुक्त वाक्य लिखने में लोग कई प्रकार की भूले कर जाते हैं। वे वाक्य का आरम्भ किसी और प्रकार

से करते हैं, उसका मध्य किसी और प्रकार का रखते हैं और अन्त कुछ ऐसे ढंग से कर जाते हैं कि आदि और मध्य से उसका ठीक मेल नहीं बैठता। अर्थात् वाक्य बनाते समय वे उसका ठीक तरह से निर्वाह नहीं कर सकते। लोग ऐसे वाक्य पढ़ना पसन्द नहीं करते। यह भी वाक्यों की बनावट का दोष है और बहुत बड़ा दोष है।

हमारे सामने कई प्रकार के भाव, कई प्रकार के विचार और कई प्रकार की घटनाएँ होती हैं। वाक्य बनाते समय हमें उन सबका एक क्रम लगाना पड़ता है—उन्हें एक सिलसिले से सजाना पड़ता है। जैसे, हम कहते हैं—आज एक ऐसे सज्जन के दर्शन हुए, जो बहुत बड़े विद्वान् होने के सिवा हमारे बहुत ही निकट के सम्बन्धी भी निकले। इस वाक्य में कई बातें एक साथ आई हैं। यदि सब बातें अलग अलग कही जायँ तो उनका रूप कुछ इस प्रकार का होगा—'आज हमें एक सज्जन के दर्शन हुए। वे बहुत बड़े विद्वान् हैं। वे हमारे निकट के सम्बन्धी भी निकले।' या हम कहते हैं—वह ऊपर से सीढ़ियाँ उतरता हुआ और बीच में एक जगह कुछ रुकता हुआ नीचे आया। इसमें भी कई बातें हैं। वह ऊपर से सीढ़ियों के रास्ते नीचे आने लगा; बीच में एक जगह कुछ रुका और तब वह नीचे आया। पर हम प्रायः इस प्रकार की बातें अलग अलग न कहकर एक साथ ही एक वाक्य में विशेष क्रम से कह जाते हैं। घटनाएँ कई होती हैं, आगे-पीछे होती हैं, कुछ रुक-रुक कर या बहुत देर बाद होती हैं। पर हमें इन सब बातों का विचार रखते हुए एक ही वाक्य में उन्हें प्रकट करने के लिए उनका एक क्रम लगाना पड़ता है। वाक्य में यही क्रम लगाने का काम बहुत कठिन होता है; और इसी में हमें सबसे अधिक सचेत रहना चाहिए। हमें उनकी बनावट में शुद्धता तथा [illegible] का भी ध्यान रखना चाहिए और सुन्दरता तथा स्पष्टता का

भी। और जो बातें जिस क्रम से हुई हों, वे सब उसी क्रम से रखनी चाहिएँ। यह क्रम लगाने या वाक्य बनाने के समय हमें सबसे अधिक ध्यान अर्थ की स्पष्टता का रखना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो वाक्य में कोई शब्द दोहराने-तेहराने से भी डरना या घबराना नहीं चाहिए। पर वाक्यों में कोई शब्द व्यर्थ या बार बार भी नहीं आना चाहिए।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो वाक्य में भावों का क्रम ठीक होना चाहिए; और दूसरे, उसकी बनावट ठीक और निर्दोष होनी चाहिए। जब वाक्य में ये दोनों बातें आ जायँगी, तब वह देखने में भी सुन्दर हो ही जायगा। जहाँ तक हो सके, हमें एक वाक्य में एक ही विचार और उसी विचार से सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी बातें प्रकट करनी चाहिएँ। एक ही वाक्य में कई बातें एक साथ प्रकट करने का प्रयत्न करना ठीक नहीं है। यदि ऐसा प्रयत्न किया जायगा तो वाक्य लम्बे तो हो ही जायँगे; सम्भव है, वे अशुद्ध और भद्दे भी हो जायँ। इसलिए पहले छोटे वाक्य बनाने का पूरा अभ्यास करना चाहिए; और तब बड़े और लम्बे वाक्य बनाने का। और जो वाक्य बनाये जायँ, उनमें सदा इस बात का भी ध्यान रहना चाहिए कि जैसा उनका आरम्भ हो, वैसा ही उनका मध्य भी हो और अन्त भी।

अब हम कुछ उदाहरण देकर अपनी बातें और भी स्पष्ट करना चाहते हैं। मान लीजिए, हम कहते हैं—इतने में दूसरी ओर से कुछ आदमी आ पहुँचे, और उपद्रव करने की चेष्टा की। यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से इसलिए अशुद्ध है कि इसके पहले अंश में तो अकर्मक क्रिया और दूसरे अंश में सकर्मक क्रिया है; और दोनों क्रियाओं का कर्त्ता 'आदमी' एक ही रूप में है। इस वाक्य में यदि 'और' के बाद 'उन्होंने' जोड़ दिया जाय तो वाक्य बिलकुल ठीक हो जायगा। उस दशा में इसका रूप होगा—इतने में दूसरी ओर से

कुछ आदमी आ पहुँचे और उन्होंने उपद्रव करने की चेष्टा की। 'थक कर वासुकि के मुँह से आग निकलने लगी' का तो यही अर्थ होगा कि आग ही थककर वासुकी के मुँह से निकलने लगी। इसलिए होना चाहिए—वासुकि थक गया और उसके मुँह से आग निकलने लगी। 'यहाँ के मजिस्ट्रेट ने शान्तिप्रिय नागरिकों पर कर्फ्यू आर्डर लगाकर और उनके नेताओं को पकड़कर घोर अन्याय किया गया है' में पहले तो 'मजिस्ट्रेट ने' और अन्त मे 'किया गया है' आया है। अब इसमें का 'गया' निकाल दीजिए और तब देखिए। जरा सी बात से वाक्य सुन्दर और शुद्ध हो गया।

बहुत कुछ इसी प्रकार की भूल 'उसने उधर देखा और बोला' में भी है। होना चाहिए—'उसने उधर देखा और कहा' या 'उसने उधर देखकर कहा' या 'उसने उधर देखा और वह बोला'। 'हम लोगों का कर्त्तव्य है कि जहाँ तक हो सके, गरीबों की सहायता की जाय।' भी कुछ इसी प्रकार के कारणों से अशुद्ध है। इसका शुद्ध रूप होगा—हम लोगों का कर्त्तव्य है कि जहाँ तक हो सके, गरीबों की सहायता करें। इन सब उदाहरणों में इसी लिए दोष आ गया है कि आदि से अन्त तक इनकी बनावट एक सी नहीं है—इनका ठीक तरह से निर्वाह नहीं हुआ है। 'यह बात ठीक भी है और नहीं भी' भी ऐसा वाक्य है, जो बनावट की दृष्टि से ठीक नहीं है। इसमें के पहले 'भी' से तो 'ठीक' पर जोर पहुँचता है; और दूसरे 'भी' से 'नहीं' पर। यदि हमें 'ठीक' पर ही जोर पहुँचाना हो, तो वाक्य का रूप रखना चाहिए—यह बात ठीक भी है और बे-ठीक भी। पर यदि हम 'है' और 'नहीं' पर जोर पहुँचाना चाहते हों, तो हमें कहना पड़ेगा—यह बात ठीक है भी और नहीं भी।

एक और वाक्य लीजिए—वहाँ जंगली फल और झरने का पानी पीकर हम लोग आगे बढ़े। इसमें 'पानी' के बाद उससे सम्बन्ध

रखनेवाली पूर्वकालिक-क्रिया 'पीकर' तो है, पर 'फल' के बाद उससे सम्बन्ध रखनेवाली कोई क्रिया नहीं है। इस वाक्य में जिस प्रकार 'पानी' के बाद 'पीकर' है, उसी प्रकार 'फल' के बाद 'खाकर' भी होना चाहिए। नहीं तो वाक्य की बनावट से यह अर्थ निकलेगा कि जिस प्रकार हमने पानी पीया था, उसी प्रकार जंगली फल भी पीये थे।

वाक्य ऐसा होना चाहिए, जिसका एक ही और स्पष्ट अर्थ हो। ऐसा न हो कि सीधे सादे या स्पष्ट अर्थ के सिवा उसका कुछ और अर्थ भी निकल सके; और सुनने या पढ़नेवालों को कुछ भ्रम हो। 'प्रधान अध्यापक लड़के चुनेंगे' कहने से यह स्पष्ट नहीं होता कि चुनने का काम प्रधान अध्यापक करेंगे या लड़के। वाक्य का यह अर्थ भी हो सकता है कि प्रधान अध्यापक कुछ लड़कों को चुनेंगे, और यह अर्थ भी हो सकता है कि सब लड़के मिलकर अपने लिए एक प्रधान अध्यापक चुनेंगे। 'अमेरिका भारत को जर्मनी से दूना अन्न देगा' से यह स्पष्ट नहीं होता कि अमेरिका जितना अन्न जर्मनी को देगा, उससे दूना, या जर्मनी भारत को जितना अन्न देगा, उससे दूना। दूसरे महायुद्ध के समय एक ऐसा अवसर आया था, जब युरोप में भी और एशिया में भी बहुत बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ छिड़ने के लक्षण दिखाई देते थे। उस समय एक समाचार-पत्र में छपा था—युरोप और एशिया में बहुत बड़ा युद्ध होगा। इस वाक्य से असल बात का तो पता चलता नहीं था, हाँ ऐसा जान पड़ता था कि एक तरफ युरोपवाले होंगे और दूसरी तरफ एशियावाले; और दोनों आपस मे बहुत बड़ा युद्ध करेंगे। यदि अन्त में 'बहुत बड़े युद्ध होंगे' होता तो भी अर्थ कुछ स्पष्ट हो जाता। कुछ दिन हुए, एक बार तुर्की की सीमा के पास बहुत-सी रूसी सेनाएँ इकट्ठी हुई थीं। उसका जो समाचार एक पत्र में छपा था, उसके ऊपर लिखा था—तुर्की के पास रूसी सेनाएँ। पर इसका यह अर्थ होता था कि तुर्की ने अपने यहाँ रूसी सेनाएँ नौकर रख

ती हैं, या उसके पास (अधिकार में) रूसी सेनाएँ हैं। खटमल मारनेवाली एक दवा के विज्ञापन में छपा था — खटमल के कष्ट का अन्त कीजिए। इसका अर्थ तो यही होता है कि खटमल को कोई कष्ट हो रहा है; उसका वह कष्ट दूर कीजिए। इसलिए ऐसे वाक्य नहीं लिखने चाहिएँ।

कभी कभी वाक्य में कोई ऐसा शब्द आ जाता है, जिसके दो या अधिक अर्थ होते हैं; और उस शब्द के कारण ही वाक्य का कुछ का कुछ अर्थ लग जाता है। 'हल' लकड़ी के उस औजार को भी कहते हैं, जिससे खेत जोते जाते हैं; और किसी प्रश्न के निपटारे (के उपाय या ढंग) को भी कहते हैं। यदि किसी बड़े प्रश्न पर विचार हो रहा हो और उसे सुलझाने के उपाय सोचे जा रहे हों, और बीच में कोई कह बैठे—मैं हल की तलाश में हूँ। तो सुननेवाले चक्कर में पड़ सकते हैं। 'मैं हल की तलाश में हूँ' का सीधा-सादा अर्थ तो यही होगा कि मैं खेत जोतने का हल ढूँढ़ रहा हूँ। इसलिए कहना चाहिए—मैं इस सवाल के हल की तलाश में हूँ।

'उस जमाने में जब अँगरेजों को फाँसी पर लटकाना होता था, तब न्याय का ध्यान नहीं रक्खा जाता था।' भी कुछ इसी प्रकार का वाक्य है, जिससे भ्रम हो सकता है। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि यह उस समय की बात है, जब अँगरेज लोग दूसरों को फाँसी पर लटकाना चाहते थे; या उस समय की बात है, जब लोग अँगरेजों को फाँसी पर लटकाना चाहते थे। जिस प्रसंग (सन् १८५७ का भारतीय स्वतन्त्रता-युद्ध) में यह वाक्य हमारे देखने में आया था, उससे तो यह स्पष्ट हो जाता था कि जब अँगरेज लोग भारतवासियों को फाँसी पर चढ़ाना चाहते थे, तब वे न्याय का ध्यान नहीं रखते थे। पर वाक्य की बनावट से इसका उलटा अर्थ भी निकल सकता है; इसलिए इस वाक्य में दोष है।

अर्थ की दृष्टि से इस बात का भी विचार करना पड़ता है कि वाक्य के सब अंगों की आपस में ठीक ठीक संगति बैठे। 'यह देखने के लिए उन्होंने पीछे की तरफ मुड़कर देखा' में आये हुए 'देखने के लिए' और 'देखा' के कारण अर्थ के विचार से वाक्य की संगति नहीं बैठती। संगति तो तब बैठेगी, जब हम कहेंगे—यह देखने के लिए ज्यों ही वह पीछे की तरफ मुड़ा। यदि हम कहें—'बार बार यह प्रश्न होता है कि इतने दिन बीत गये, पर अभी तक कुछ नहीं हुआ।' तो यह इसलिए ठीक नहीं है कि आरम्भ में 'प्रश्न' शब्द आने पर भी वाक्य में कहीं प्रश्न का कोई भाव नहीं है। प्रश्न का भाव तो तभी आवेगा, जब कहा जायगा—इतने दिन बीत जाने पर भी अब तक क्यों कुछ नहीं हुआ; अथवा अब तक क्या हुआ। यह कहना—'आज तुमने अपनी नई चालाकी का नया नमूना दिखलाया है' भी अर्थ के विचार से ठीक नहीं है। नई चीज या बात का नया नमूना सदा नया ही होगा; हाँ पुरानी चीज या बात का नया नमूना भी हो सकता है। इसलिए या तो होगा—'नई चालाकी का नमूना' या 'चालाकी का नया नमूना'। 'यह चीज सपने में मिलना दुर्लभ है' कहना भी ठीक नहीं है। या तो होना चाहिए—'यह चीज सपने में भी नहीं मिल सकती' या 'यह दुर्लभ है'. 'उस दिन आपको यह आशा हो गई थी कि निर्मला के मन पर हमारा सिक्का जम गया' में अर्थ के विचार से 'आशा' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है। 'आशा' सदा ऐसी बात के लिए होती है, जो अभी होने को हो। पर वाक्य के अन्त में जो 'जम गया' क्रिया है, वह भूत काल की सूचक है। इसलिए या तो इस वाक्य में 'आशा' की जगह 'विश्वास' होना चाहिए या वाक्य के अन्त में 'जम जायगा' होना चाहिए। 'इससे हमें आशा होती थी कि इस्लाम का भविष्य उज्ज्वल है' में 'है' की जगह 'होगा' होना चाहिए। यदि हम कहें—'यह इस बात का प्रमाण है कि आपका वहाँ जाना आवश्यक है'

तो इस वाक्य में अर्थ की संगति ठीक नहीं बैठती। कारण यह है कि 'प्रमाण' सदा ऐसी बात का होता है, जो या तो हो चुकी हो या जिसे कुछ लोग ठीक मान चुके हों। जो बात अभी होने को हो या आने वाली हो, उसके सम्बन्ध में 'प्रमाण' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है। यह कहना अवश्य ठीक है—यह इस बात का प्रमाण है कि आप वहाँ जानेवाले हैं' या 'आपका वहाँ जाना आवश्यक है'। यह ठीक है कि संस्कृत मे 'प्रमाण' के बहुत-से अर्थों में से एक अर्थ लक्षण का चिह्न भी है। पर उसका मुख्य और पहला अर्थ 'सबूत' ही है; और ऊपर के वाक्य मे पहले उसी अर्थ पर ध्यान जाता है। इसलिए ऐसे वाक्य मे 'प्रमाण' का प्रयोग ठीक नहीं है।

वाक्य ऐसा होना चाहिए, जिसमें अर्थ के विचार से दो विरोधी शब्द या बातें न हों। जैसे—'तब शायद यह काम जरूर हो जायगा' में 'शायद' और 'जरूर' दो विरोधी शब्द हैं। 'शायद' के साथ 'जरूर' या 'जरूर' के साथ 'शायद' नहीं चल सकता। 'प्रायः ऐसे अवसर आते हैं, जिनमें लोगों को कभी कभी अपना मत बदलना पड़ता है।' मे 'प्रायः' और 'कभी कभी' दो विरोधी बातें हैं। 'वे बिलकुल चुप हैं और कहते हैं कि हम इस झगड़े मे नहीं पड़ेंगे।' मे 'बिलकुल चुप हैं' और 'कहते हैं' दो विरोधी बातें है। 'आज-कल इसका प्रचार बहुत अधिक कम हो गया है' में 'कम' से पहले 'अधिक' बिलकुल व्यर्थ है। 'मार्ग की धूल से थका हुआ साँप टेढ़ा-मेढ़ा चलता हुआ फुफकार रहा है और मोर की छाया में कुण्डल मारे बैठा है' में 'चलता हुआ' और 'बैठा है' दो विरोधी बाते तो है ही, 'गरम धूल से थका हुआ' भी इसलिए ठीक नहीं है कि गरम धूल थकाती नहीं, बल्कि जलाती, झुलसाती या तपाती है।

कभी कभी इस तरह की विरोधी बातों के कारण वाक्य ऐसा हो जाता है कि उसका कुछ अर्थ ही नहीं निकलता। जैसे—यदि यह जाति

गुलाम न होती तो अब तक कभी की स्वतन्त्र हो चुकी होती। इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि यह जाति गुलाम होने के कारण ही अब तक स्वतन्त्र नहीं हो सकी है। लेकिन इस तरह की बात कहना भी वैसा ही है, जैसा यह कहना—'यदि हम सोये न होते तो जागते होते' या 'यदि हम खा न लेते तो भूखे रहते'। इसी तरह के पर इनसे भी विलक्षण वाक्य वे होते है, जिनका वास्तव में कुछ अर्थ ही नही होता। एक वार एक सभा में कहा गया था—जिन लोगो तक हमारी आवाज न पहुँचती हो, वे कृपाकर हाथ उठा दे। पर यह बात कहते समय यह नहीं सोचा गया कि यदि लोगों के कानों तक आवाज पहुँचेगी ही नहीं, तो वे यह कैसे जानेंगे कि हमें हाथ उठाना चाहिए। इसलिए हमें अपनी बात के सम्बन्ध में इस प्रकार के अर्थ या आशय की ओर भी ध्यान रखना चाहिए।

अब कुछ ऐसे वाक्यों के उदाहरण लीजिए, जिनमें शब्दों का क्रम ठीक नहीं होता। 'इस लाठी से जितने तेरे हिमायती हैं, उन सबके सिर तोड़ दूँगा।' का ठीक रूप होगा—तेरे जितने हिमायती है, उन सबके सिर इस लाठी से तोड़ दूँगा। 'यह कहकर मैंने जितने आदमी दुकान में बैठे थे, उन सबको देखा' का ठीक रूप होगा—यह कहकर मैंने उन सब आदमियों की ओर देखा, जो उस दुकान पर बैठे थे। 'हम उनका मुँह उन्हें सौ रुपये देकर बन्द करना चाहते हैं' कहने से 'हम उन्हें सौ रुपये देकर उनका मुँह बन्द करना चाहते है' कहना अधिक सुन्दर भी है और अधिक स्पष्ट भी। इसी प्रकार 'अगले दो दिनो में मन्त्रियों से जो बात-चीत चल रही है, उसका निपटारा हो जायगा।' की जगह, मंत्रियों से जो बात-चीत चल रही है, उसका दो दिनो में निपटारा हो जायगा।' कहना कहीं अच्छा है। और 'उन लोगो ने जिस समय मैं बातें कर रहा था, शोर मचाना शुरू किया' से 'जिस समय मैं बाते करता था, उस समय उन लोगों ने शोर मचाना शुरू किया।' कहना अधिक अच्छा है।

कभी कभी वाक्य में कुछ शब्दों के ठीक स्थान पर न होने के कारण ही उसका और का और अर्थ निकल सकता है। जैसे—रास्ते में लेटर वक्स में मैंने जो पत्र लिखा था, वह छोड़ दिया। इसका अर्थ यह होगा कि रास्ते में मैंने लेटर वक्स में पत्र लिखा था। इसलिए इसका ठीक रूप होगा—मैंने जो पत्र लिखा था, वह रास्ते में लेटर वक्स में छोड़ दिया। 'एक रेल-गाड़ी में सफर करते समय कहा जाता है कि दो युरोपियनों ने एक देशी कप्तान को पीटा।' भी ठीक इसी प्रकार का वाक्य है। इसका शुद्ध रूप होगा—कहा जाता है कि एक रेल-गाड़ी में सफर करते समय दो युरोपियनों ने······पीटा।

वाक्य ऐसा होना चाहिए, जिसका अर्थ तुरन्त समझ में आ जाय; और अर्थ के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम न हो। 'स्वतन्त्रता के साथ इस देश की गरीबी का अन्त हो जायगा' का आप क्या अर्थ समझेंगे? यही न कि जब स्वतन्त्रता का अन्त हो जायगा, तब उसके साथ इस देश की गरीबी का भी अन्त हो जायगा? पर इस वाक्य का यह आशय नहीं है। वास्तव में यह वाक्य लिखनेवाले का आशय यह था कि ज्यों ही इस देश को स्वतन्त्रता मिलेगी, त्यों ही इसकी गरीबी का अन्त हो जायगा। इसलिए इस वाक्य का शुद्ध रूप होगा—स्वतन्त्रता मिलते ही इस देश की गरीबी का अन्त हो जायगा। मूल वाक्य अधूरा भी है और भ्रम उत्पन्न करनेवाला भी।

'यदि जाड़े की वर्षा न गड़बड़ाती तो इस साल उपज अच्छी होती' का पढ़ने या सुननेवाले ठीक ठीक अर्थ न समझ सकेंगे। उनकी समझ में यह बात न आवेगी कि जाड़े की वर्षा स्वयं गड़बड़ा गई, जिससे उपज अच्छी नहीं हुई; या अच्छी उपज न होने का कारण यह है कि जाड़े की वर्षा ने उसे गड़बड़ा दिया। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि इस वाक्य के दो प्रकार के अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि इस वर्ष जाड़े की वर्षा ही कुछ ऐसी गड़बड़ हुई कि उपज अच्छी नहीं हुई।

और दूसरा यह कि उपज तो अच्छी हो जाती, पर जाड़े की वर्षा ने उसे गड़बड़ा दिया। यद्यपि फल या परिणाम के विचार से दोनों बातें बहुत कुछ एक ही हैं, फिर भी दोनों में एक विशेष अन्तर है। पहले अर्थ के अनुसार जाड़े की वर्षा स्वयं गड़बड़ा जाती है; और दूसरे अर्थ में यह स्वयं नहीं गड़बड़ाती, बल्कि उपज को गड़बड़ा देती है। और अर्थ के विचार से यह अन्तर बहुत बड़ा है। इस गड़बड़ी का कारण यही है कि 'गड़बड़ाना' क्रिया अकर्मक भी है और सकर्मक भी। वाक्य से यह पता नहीं चलता कि उसमें इसका प्रयोग अकर्मक रूप में हुआ है या सकर्मक रूप में।

'उन्होंने एक कांग्रेसी मुसलमान को चोट पहुँचाई और कांग्रेस से अलग हो जाने के लिए धमकाया' भी बहुत-कुछ इसी प्रकार का वाक्य है। इसके अन्तिम अंश 'कांग्रेस से अलग हो जाने के लिए धमकाया' का तो यही अर्थ हो सकता है कि उन्होंने यह धमकी दी कि हम स्वयं कांग्रेस से अलग हो जायँगे। पर वाक्य का वास्तविक आशय यह नहीं है, बल्कि यह कि उन्होंने उस कांग्रेसी मुसलमान को ही, जिसे उन्होंने चोट पहुँचाई थी, यह धमकी दी कि यदि तुम कांग्रेस से अलग न हो जाओगे, तो हम तुम्हारे साथ और भी अधिक बुरा व्यवहार करेंगे। इसलिए वाक्य का शुद्ध रूप होगा......उसे धमकाया कि यदि तुम कांग्रेस से अलग न हो जाओगे तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा।

'अपनी चंचल जीभ से उसके कन्धे के बाल हिल रहे थे' ऐसा वाक्य है, जो बनावट, अर्थ और व्याकरण सभी की दृष्टि से अशुद्ध है। पहले तो इसमें के पहले अंश 'अपनी चंचल जीभ से' का दूसरे अंश 'उसके बाल हिल रहे थे' से कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। यह वाक्य की बनावट का दोष है। दूसरे, 'चंचल जीभ से कन्धे के बाल हिल रहे थे' का, संगति न बैठने के कारण, कोई अर्थ नहीं होता। और

तीसरे, 'अपनी' के कुछ ही बाद 'उसके' व्याकरण की दृष्टि से ठीक नहीं है। वाक्य का वास्तविक आशय यह है कि उसकी चंचल जीभ बार बार हिल रही थी; और उस जीभ के हिलने के कारण ही उसके कन्धे के बाल भी हिल रहे थे। पर वाक्य की बनावट दूषित होने के कारण उससे यह अर्थ नहीं निकलता।

'वन-स्थल खिले हुए पेड़ों के द्वारा आनन्द मना रहा था' भी बहुत-कुछ भद्दा और निरर्थक सा वाक्य है। पहली बात तो यह है कि आनन्द स्वयं मनाया जाता है, किसी के द्वारा नहीं मनाया जाता। फिर, 'खिले हुए पेड़ों के द्वारा' आनन्द मनाने का भी कुछ अर्थ नहीं होता। इसी लिए इस वाक्य का कोई ठीक अर्थ नहीं निकलता। वास्तव में वाक्य का आशय यह है कि वन में जो पेड़ खिले हुए थे, उन्हें देखने से ऐसा जान पड़ता था कि वह आनन्द मना रहा है। पर वाक्य की बनावट से यह बात स्पष्ट नहीं होती।

'चारों ओर से चल रही हवा के झोंकों से पेड़ हिल रहे हैं' ऐसा वाक्य है जो 'चल रही' क्रिया के कारण ही व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध और भद्दा हो गया है। यदि इस 'चल रही' की जगह 'चलने-वाली' या 'चलती हुई' होता तो वाक्य शुद्ध भी हो जाता और उसमें का भद्दापन भी निकल जाता। 'इस समय उठ रहे आन्दोलन से यह भय होता है कि ....।' और 'बाढ़-पीड़ित क्षेत्रों में किये जा रहे प्रयत्नों का कोई विशेष परिणाम नहीं हो रहा है' भी इसी प्रकार के दूषित वाक्य हैं।

कभी कभी वाक्य में एक ही शब्द बार बार कई जगह आकर उसे व्यर्थ बढ़ा भी देता है और भद्दा भी कर देता है। जैसे—'इतने में कोई चमककर आकर धक्का देकर निकल गया' में तीन बार 'कर' आया है। यह वाक्य बहुत ही सीधी और अच्छी तरह से इस प्रकार लिखा जा सकता है—इतने में कोई चमकता हुआ आया और धक्का देकर निकल

गया। 'शहर के एक आबाद महल्ले के एक बड़े चौराहे के मोड़ के सामने के मकान में·····।' मे पाँच जगह 'के' आया है, जिससे वाक्य बहुत भद्दा हो गया है। इसका ठीक रूप होगा—शहर के एक आबाद महल्ले में एक बड़ा चौराहा था। वहाँ एक मोड़ के सामनेवाले मकान में······।

इस प्रकार की और अनेक बातें हैं जो यों देखने में तो बहुत छोटी या साधारण जान पड़ती हैं, पर जिनके कारण बड़ी बड़ी भूलें हो जाती हैं और वाक्य में बहुत भद्दापन आ जाता है। विद्यार्थी ऐसी छोटी छोटी और साधारण बातों पर ध्यान रखकर बहुत सहज में इस प्रकार की बड़ी बड़ी भूलों से बच सकते हैं।

८

संज्ञाएँ

'संज्ञा' का अर्थ है नाम; और नाम सदा किसी चीज का होता है। हम दाल-रोटी खाते हैं, कपड़े पहनते हैं, पुस्तकें और समाचारपत्र पढ़ते हैं, तरह तरह के खेल खेलते हैं, कुछ काम-धन्धा करते हैं, किसी से बात-चीत करते हैं, किसी से मेल और किसी से लड़ाई-झगड़ा करते हैं; और इसी प्रकार के न जाने कितने दूसरे काम करते हैं। हम रास्ते में चलते हैं तो हमें कहीं मकान मिलते हैं, कहीं गलियाँ और कहीं मैदान। हमें पुरुष, स्त्रियाँ और बालक तथा गाड़ियाँ, घोड़े और दूसरी सवारियाँ दिखाई देती हैं। गाँवों में हमें खेत, पेड़, पगडंडियाँ और झोंपड़ियाँ दिखाई देती हैं। इन वाक्यो में दाल-रोटी, कपड़े, पुस्तकें, समाचारपत्र, खेल, काम-धन्धा, बात-चीत, मेल, लड़ाई-झगड़ा, मकान, पेड़, गलियाँ, मैदान, स्त्रियाँ, पुरुष, गाड़ियाँ, घोड़े और सवारियाँ सभी 'चीजें' हैं। इन चीजों की पहचान के लिए हमने इनके अलग अलग नाम रख लिये है। व्याकरण में यही नाम 'संज्ञा' कहलाते है। 'संज्ञा' और 'नाम' वास्तव में एक ही चीज है।

आप पूछ सकते हैं कि दाल-रोटी, मकान, सड़क, खेत आदि तो चीजें हैं, पर स्त्रियाँ, पुरुष और बालक कैसे चीजों में गिने जा सकते हैं? और यदि इन्हें भी किसी तरह 'चीज' मान लें तो भी बात-चीत,

मेल, लड़ाई झगड़े और काम-धन्धे को हम कैसे 'चीज' मान सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि चीज या वस्तु का वास्तविक अर्थ बहुत व्यापक है। जो कुछ हमें दिखलाई पड़े या जिसे हम छू या पकड़ सकें, वह तो 'चीज' या 'वस्तु' है ही; पर हम अपने मन से जिसकी कल्पना कर लें, वह भी 'चीज' या 'वस्तु' की व्याख्या में आ जाता है। भूत-प्रेत, मृत्यु आदि ऐसी चीजें हैं, जो देखी, छूई या पकड़ी नहीं जा सकतीं; पर हमने अपनी बुद्धि से उनकी कल्पना कर ली है। दिन, रात, सन्ध्या और सवेरा सब देखने में तो आते हैं, पर छूए या पकड़े नहीं जा सकते। फिर भी ये मानी हुई 'चीजें' हैं; और इसी लिए इनके ये नाम भी हैं। हम कहते हैं—आखिर सच भी कोई चीज है। 'सच' न तो हमें दिखाई देता है, न हम उसे छू या पकड़ सकते हैं। तब वह 'चीज' कैसे हो गया? इसी लिए कि हमने उसे एक चीज के रूप में मान लिया है। बस मेल, लड़ाई-झगड़ा आदि भी इसी तरह की 'चीजें' हैं। इसी लिए संज्ञाओं के मुख्य दो भेद माने गये हैं—(१) वस्तुवाचक या पदार्थवाचक; और (२) भाववाचक। वस्तुवाचक या पदार्थवाचक संज्ञाओं के भी दो भेद होते हैं—नामवाचक या व्यक्ति-वाचक और जातिवाचक। राम, कृष्ण, गंगा, यमुना आदि नामवाचक या व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं; घोड़ा, गाड़ी, घर, पाठशाला आदि जाति-वाचक संज्ञाएँ हैं; और सचाई, सफेदी, उत्तमता, भोलापन आदि भाव-वाचक संज्ञाएँ हैं।

'पाठशाला' शब्द सुनते ही हमारी आँखों के सामने वह जगह आ जाती है, जहाँ लड़के पढ़ते है। 'पानी' का नाम सुनते ही हमारे मन में उस चीज का ध्यान आ जाता है, जो हम प्यास लगने पर पीते हैं और जो हमे नदियों, तालाबों और कूओं मे एकत्र या वर्षा के समय आकाश से बरसती हुई दिखाई देती है। जब हम कहते हैं—'जाओ, अन्दर से कुरता उठा लाओ।' तब आप कुरता ही लाते हैं,

टोपी या कोट नहीं लाते। आप जानते हैं कि एक विशेष प्रकार का पहनावा ही 'कुरता' कहलाता है; और वह धोती, टोपी या कोट से बिलकुल अलग तरह का होता है। आपको कुरते के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं होता। जब हम कहते हैं—'जाओ, गोविन्द को बुला लाओ।' तब आप गोविन्द को ही बुलाकर लाते हैं; राम, श्याम या कृष्ण को नहीं। यह इसी लिए कि नाम और वस्तु या व्यक्ति का कुछ ऐसा सम्बन्ध होता है, जो हमें उस वस्तु या व्यक्ति का निश्चय कराता और अनेक प्रकार की भूलों से बचाता है।

यह पुस्तक व्याकरण की नहीं है, इसलिए हम यहाँ विस्तार से यह बतलाने की आवश्यकता नहीं समझते कि व्याकरण में संज्ञाएँ कितने प्रकार की होती हैं या उनकी पहचान क्या है। हम यह भी समझते हैं कि आप व्याकरण पढ़ चुके होंगे और यह जानते होंगे कि संज्ञाएँ, सर्वनाम, विशेषण आदि कितने प्रकार के होते हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य तो यही बतलाना है कि इन सब का प्रयोग करने में लोग कितने प्रकार की भूलें करते हैं; और उन भूलों से आप किस तरह बच सकते हैं। इसलिए हम यहाँ संज्ञाओं के भेद आदि बतलाने के फेर में न पड़कर उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भूलों का ही विचार करेंगे; और ऐसी बातें बतलावेंगे, जो व्याकरण के क्षेत्र के बाहर की हैं।

यदि हम आपसे पूछें कि 'महिला' (या अबला) शब्द का क्या अर्थ है, तो आप झट कह बैठेंगे—स्त्री। फिर यदि हम पूछें कि 'पत्नी' का क्या अर्थ है, तो भी आप कहेंगे—स्त्री। इससे सिद्ध होता है कि एक तो जिसे 'महिला' कहते हैं, उसे 'स्त्री' कहते हैं; और दूसरे, जिसे 'पत्नी' कहते है, उसे भी 'स्त्री' कहते हैं। पर कठिनता यह है कि जिसे हम 'महिला' कहते हैं, उसे 'पत्नी' नहीं कह सकते; और जिसे 'पत्नी' कहते हैं, उसे 'महिला' नहीं कह सकते। हम आपको [illegible]ला' का अर्थ 'पत्नी' नहीं बतला सकते। हाँ, यह बात दूसरी है कि

कोई महिला भी किसी सज्जन की 'पत्नी' हों। 'महिला' शब्द भले घर की सभी प्रकार की स्त्रियों के सम्बन्ध में बोला जाता है। उनमें ब्याही हुई स्त्रियाँ भी हो सकती हैं, बिना ब्याही हुई भी और विधवाएँ भी। पर 'पत्नी' सदा ब्याही हुई स्त्री को ही कहेंगे; और वह भी उसी अवस्था में, जब उसके पति का भी उसके साथ उल्लेख हो। जैसे—'ये हमारे बड़े भाई की पत्नी हैं' या 'ये हमारे एक मित्र की पत्नी हैं'। ऐसे अवसरों पर हम 'पत्नी' की जगह 'महिला' या 'अबला' आदि का प्रयोग नहीं कर सकते। अब 'स्त्री' शब्द लीजिए। हम 'महिला' को भी स्त्री कह सकते हैं और 'पत्नी' को भी। पर जब हम हर जगह 'महिला' शब्द के स्थान पर 'पत्नी' शब्द का और 'पत्नी' शब्द के स्थान पर 'महिला' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते, तब यह सिद्ध होता है कि 'स्त्री' शब्द के दो अर्थ हैं—एक महिला और दूसरा पत्नी। और इसी लिए हमें यह सोचने की आवश्यकता होती है कि कहाँ 'महिला' शब्द का, कहाँ 'स्त्री' शब्द का और कहाँ 'पत्नी' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

पहले हम कई अवसरों पर कह आये हैं कि एक शब्द के कई अर्थ होते हैं; और हमें उन शब्दों का प्रयोग करने के समय उनके मुख्य अर्थ का ध्यान रखना चाहिए। यहाँ हम इतना और बतला देना चाहते हैं कि कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो यों देखने में तो एक ही से अर्थवाले जान पड़ते हैं, फिर भी जिनके अर्थों में थोड़ा-बहुत भेद होता है। ऊपर 'महिला', 'पत्नी' और 'स्त्री' के सम्बन्ध में जो बातें कही गई हैं, वे अर्थों के इसी प्रकार के सूक्ष्म भेदों के आधार पर हैं। शब्दों का प्रयोग करते समय जहाँ हम इस प्रकार के सूक्ष्म भेदों का विचार नहीं करते, वहीं हमसे भाषा-सम्बन्धी बड़ी बड़ी भूलें होती हैं। इसलिए जो लोग ऐसी भूलों से बचना चाहते हों, उन्हें शब्दों और उनके अर्थों के सूक्ष्म भेदों का सदा पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए।

जिस प्रकार के सूक्ष्म भेद महिला, स्त्री और पत्नी के अर्थों में हैं, बहुत-कुछ उसी प्रकार के सूक्ष्म भेद 'खेद' और 'दुःख' सरीखे शब्दों में भी हैं। 'खेद' हमारे मन की वह अवस्था है, जिसमें उसकी प्रसन्नता कुछ कम हो जाती है और उसमें एक तरह की उदासी आ जाती है। यदि हम कहें—'मुझे खेद है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया' या 'मुझे खेद है कि आज आपसे भेंट न कर सकूँगा' तो यह 'खेद' का ठीक प्रयोग होगा। 'दुःख' में भी मन की प्रसन्नता घटती है; पर 'खेद' की अपेक्षा बहुत अधिक घटती है। 'दुःख' वास्तव में 'सुख' का बिलकुल उलटा है। 'सुख' के समय हमारे मन में जितनी प्रसन्नता होती है, 'दुःख' के समय प्रायः उतना ही कष्ट होता है। 'दुःख' में 'खेद' से बढ़कर एक बात और होती है। हम 'दुःख' से छुटकारा पाना चाहते हैं और उससे दूर भागते हैं। हम चाहते हैं कि जितनी जल्दी हो सके, हमारे दुःख का अन्त हो जाय। पर 'खेद' हमारे मन में थोड़े समय के लिए आता और जल्दी ही आपसे आप दूर हो जाता है। उससे छुटकारा पाने का भाव हमारे मन में उत्पन्न ही नहीं होने पाता। इसी लिए यह कहना तो ठीक है—आपके पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ। पर यह कहना ठीक नहीं है—आपका पत्र न मिलने से मैं बहुत दुःखी हूँ। ऐसे अवसरों पर 'दुःख' की जगह 'खेद' का प्रयोग करना चाहिए। 'दुःख' से भी बढ़कर बुरी मन की एक और अवस्था होती है, जिसे 'शोक' कहते हैं। यह 'शोक' किसी परम आत्मीय या प्रिय की मृत्यु से ही होता है। इसी लिए किसी बहुत बड़े आदमी की मृत्यु होने पर कहा जाता है—उनकी मृत्यु से सारे नगर में शोक छा गया। पर यदि हम कहें—'मुझे इस बात का शोक है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया' तो 'शोक' का ऐसा प्रयोग बहुत भद्दा होगा, और इसे देखकर समझदार लोग हमारी हँसी ही उड़ावेंगे।

साधारणतः लोग यह समझते हैं कि 'प्रार्थना' और 'निवेदन' में कोई अन्तर नहीं है; और इसी लिए वे एक की जगह दूसरे शब्द का प्रयोग कर जाते हैं। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो दोनों में बहुत अन्तर है। जब हम अपने से किसी बड़े से कोई ऐसा काम कराना चाहते हैं, जो उसकी शक्ति मे होता है, तब हम उस काम के लिए उससे जो कुछ कहते हैं, वह 'प्रार्थना' कहलाता है। हम अपने गुरु जी से प्रार्थना करते हैं—आप हमें एक दिन की छुट्टी दें। अपने बड़े भाई या पिता जी से प्रार्थना करते हैं—आप हमें पुस्तकें या कपड़े ले दें। अपने भाई-बन्दों और मित्रों से प्रार्थना करते हैं—आप हमारे छोटे भाई के विवाह के दिन हमारे यहाँ आने की कृपा करें। और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं—आप हमें सब कष्टों से बचावें और हमें अच्छे रास्ते पर चलावें। प्रार्थना करते समय हमारे मन में किसी से कोई काम कराने की इच्छा होती है। 'निवेदन' में प्रार्थनावाली और सब बातें तो होती या हो सकती हैं, पर यह 'इच्छा-वाली' बात नहीं होती। उसमें अपने विषय की कोई बात किसी बड़े के सामने केवल कही या रक्खी जाती है। इसी लिए हम कहते हैं—'मुझे जो कुछ निवेदन करना था, वह मैं कर चुका। अब आपकी जो इच्छा हो, वह करें'। या 'पहले मेरा सारा निवेदन सुन ले, और तब जो कुछ करना हो, वह करें'। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि 'निवेदन' में अपनी ओर से कोई काम करने के लिए नहीं कहा जाता। उस सम्बन्ध में कोई काम करने या न करने का भार उसी पर छोड़ दिया जाता है, जिससे निवेदन किया जाता है। इसी लिए यह कहना ठीक नहीं है—'प्रार्थना है कि कल हमारे यहाँ प्रीति-भोज होगा' या 'प्रार्थना है कि आज मेरे भाई का शरीर अच्छा नहीं है'। हाँ, यह कहना ठीक है—प्रार्थना है, कि मेरे भाई के लिए कुछ दवा भेज दें। अथवा—प्रार्थना है कि मुझे घर जाने के लिए पचीस रुपये दिलवा दें।

बहुत से लोग भूल से यह समझते हैं कि 'आकार' और 'रूप' दोनों एक चीज हैं। पर वास्तव में इन दोनों में बहुत अन्तर है। 'आकार' में किसी चीज की केवल लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि आती हैं। बल्कि हम कह सकते हैं कि कोई चीज देखने पर हमारे सामने उसकी जो बाहरी या ऊपरी रेखाएँ आती हैं, वही मिलकर 'आकार' कहलाती हैं। उसकी लम्बाई चौड़ाई या बाहरी रेखाओं आदि के बीच जो वर्ण या उतार-चढ़ाव होते हैं, वे 'आकार' के अन्तर्गत नहीं आते। पर इन सब चीजों के मेल से जो आकृति बनती है, वह 'रूप' है। 'रूप' में लम्बाई-चौड़ाई, वर्ण या रंग, उतार-चढ़ाव और उभार सभी आ जाते हैं। इसी लिए हम कहते हैं—'उसका आकार लम्बा है' या 'स्थूल है' आदि; और 'उसका रूप सुन्दर (या देखने में अच्छा) है' आदि। और इसी लिए यह कहना ठीक नहीं है—आज यह पुस्तक छपे आकार में देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। यहाँ 'आकार' की जगह 'रूप' होना चाहिए। और इसी लिए यह कहना भी ठीक नहीं है—इस बार पुस्तक लम्बे रूप में छपी है। अथवा—इस नाले का रूप पहले से बहुत बढ़ गया है। यहाँ रूप की जगह 'आकार' होना चाहिए।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इसी प्रकार के अन्तर 'खेल' और 'खेलवाड़' में, 'थाना' और 'कोतवाली' में, 'लिपि' और 'भाषा' में, 'बोली' और 'भाषा' में, 'लेख' और 'लिखावट' में, 'बाजार' और 'हाट' में, 'चीज' और 'सामान' में, 'शिक्षा' और 'अध्ययन' में, 'राजा' और 'शासक' में, 'प्रजा' और 'निवासी' में, 'नाती' और 'पोते' में, 'अंश' और 'भाग' में, 'आचरण' और 'व्यवहार' में, 'सचाई' और 'ईमानदारी' में, 'पाजीपन' और 'नीचता' में, 'मकान' और 'कोठी' में, 'छज्जे' और 'बरामदे' में, 'पेड़' और 'पौधे' में, 'घोड़े' और 'टट्टू' में, 'छड़ी' और 'डण्डे' में, तथा इसी प्रकार के दूसरे सैकड़ों-हजारों शब्दों में

हैं। यों देखने में हम भले ही समझ लें कि दो शब्द प्रायः एक-से हैं, पर विचार करने पर हमें उनमें बहुत कुछ अन्तर दिखाई देगा। हम जहाँ 'लज्जा' का प्रयोग कर सकते हैं, वहाँ 'संकोच' का प्रयोग नहीं कर सकते; और जहाँ 'आकांक्षा' रख सकते हैं वहाँ 'इच्छा' नहीं रख सकते। इसलिए हमें संज्ञाओं का प्रयोग बहुत ही समझ-बूझकर और सावधानी से करना चाहिए।

मान लीजिए कि हमें दो ऐसी पुस्तकें मिलती हैं, जिनके विषय आपस में बहुत-कुछ मिलते हैं। पर उनके सम्बन्ध में हम यह नहीं कह सकते—इन दोनों पुस्तकों में बहुत मेल है। हमें कहना पड़ेगा—इन पुस्तकों में बहुत कुछ समानता है। पर यदि दो लड़कों का आपस में बहुत मेल-जोल दिखाई दे, तो हम अवश्य कह सकते हैं—इन दोनों लड़कों में बहुत मेल है। 'ग्रामीणों और डाकुओं में युद्ध' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'युद्ध' सेनाओं की लड़ाई को कहते हैं, साधारण आदमियों की लड़ाई को नहीं। इसलिए यहाँ 'युद्ध' की जगह 'लड़ाई' होना चाहिए। 'चुटकी बजाते ही गिलहरी पेड़ की छत पर चढ़ गई' कहने से 'पेड़ के ऊपरी भाग पर पहुँच गई' कहना ही ठीक है। 'वह लड़का डाक्टरी परीक्षा के लिए भेजा गया है' में 'परीक्षा' की जगह 'जाँच' होना चाहिए। हाँ—'इस वर्ष सौ लड़के परीक्षा मे बैठे हैं' कहना बिलकुल ठीक है। यहाँ 'परीक्षा' की जगह 'जाँच' का प्रयोग नहीं किया जा सकता। 'इस वट वृक्ष की छाया में नगर की सारी जन-संख्या अच्छी तरह विश्राम कर सकती है' में 'जन-संख्या' का प्रयोग ठीक नहीं है। उसकी जगह 'निवासी' या इसी प्रकार का और कोई शब्द होना चाहिए। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है—दस वर्षों मे हमारे नगर की जन संख्या दूनी हो गई है। 'इस समय हमारी आयु बीस वर्ष की है' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'आयु' में जन्म से मृत्यु तक का सारा समय आ जाता है। यहाँ 'आयु' की

जगह 'अवस्था' होना चाहिए[1]। हाँ यदि कोई आदमी साठ वर्ष का होकर मरे, तो हम कह सकते हैं—उसने साठ वर्ष की आयु पाई। 'यदि नदी का पानी कुछ और बढ़ा तो सारे गाँव के डूब जाने का सन्देह है' में 'सन्देह' की जगह 'आशंका' या 'भय' होना चाहिए।

हमें संज्ञाओं के चुनाव में तो सतर्क रहना ही चाहिए, उनके प्रयोग में संगति का भी ध्यान रखना चाहिए। यह कहना ठीक नहीं है—'तभी से देश के गले में पराधीनता की बेड़ियाँ पड़ गई'; क्योंकि बेड़ियाँ पैरों में पड़ती हैं, गले में नहीं। प्रयोग की दृष्टि से 'यह बात विश्वास की जाने लगी है कि······।' के बदले हमें कहना चाहिए—'इस बात पर विश्वास किया जाने लगा है कि······।' और ऐसा करना मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था' में या तो 'निश्चय' की जगह 'निश्चित' होना चाहिए, या वाक्य का रूप होना चाहिए—मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि ऐसा करूँगा।

---

१. 'अवस्था' का एक और अर्थ 'हाल' या 'दशा' भी होता है। जैसे—आज कल उनकी अवस्था ठीक नहीं है। अर्थात् वे या तो बहुत बीमार हैं या उन्हे धन का कष्ट है। अथवा—ऐसी अवस्था में तो यही उचित जान पड़ता है कि हम लोग यहाँ से हट जायँ।

९

सर्वनाम

हिन्दी व्याकरण में 'सर्वनाम' उन शब्दों को कहते हैं, जो वाक्यों में संज्ञाओं की जगह, बल्कि यों कहना चाहिए कि व्यक्तियों या पदार्थों के नामों की जगह आते हैं। सर्वनाम की आवश्यकता साधारणतः इसी लिए होती है कि हमें किसी संज्ञा का बार बार प्रयोग न करना पड़े। जैसे, हम यह नहीं कहते—'आज मैं माधव के घर गया था। माधव घर पर नहीं था। माधव अपने चाचा के यहाँ गया था, क्योंकि माधव के चाचा बीमार थे।' हम कहते हैं—'आज मैं माधव के घर गया था। वह घर पर नहीं था। वह अपने चाचा के यहाँ गया था, क्योकि उसके चाचा बीमार थे। अथवा—उस समय वह अपने चाचा के यहाँ गया था, क्योंकि वे बीमार थे। पहले कथन में चार बार 'माधव' शब्द आया है; पर दूसरे कथन मे एक ही बार आया है। बाकी स्थानो में 'वह' और 'उसका' शब्द आये हैं। दूसरे कथन का जो दूसरा रूप ऊपर दिया गया है, उसमें भी दूसरी बार 'चाचा' की जगह 'वे' आया है। इसके सिवा दोनो कथनों का आरम्भ जिस 'मैं' शब्द से हुआ है, वह भी सर्वनाम ही है; क्योंकि वह बोलनेवाले का सूचक है और उसके नाम की जगह आया है। हमने 'माधव' या चाचा का नाम (संज्ञा) न लेकर जिन शब्दों से काम चलाया

है, वे सब शब्द सर्वनाम हैं। सर्वनाम का अर्थ ही है—जो सबका नाम हो। जिस प्रकार हम अपने आपको 'हम' या 'मैं' कहते हैं, उसी प्रकार और सब लोग भी अपने आपको 'हम' या 'मैं' कहते या कह सकते हैं। नाम की जगह आनेवाले इन शब्दों का प्रयोग सभी लोग करते हैं। और इस प्रकार के शब्द नाम या संज्ञा की जगह आते हैं, इसलिए संस्कृत व्याकरण में 'सर्वनाम' भी 'संज्ञा' का ही एक भेद या प्रकार माना जाता है।

पर हम बात-चीत करते समय या लिखते समय कभी यह नहीं कहते या लिखते—हम अभी एक संज्ञा का प्रयोग कर चुके हैं, इसलिए अब आगे इसकी जगह हम सर्वनाम का प्रयोग करेंगे। बिना हमारे कहे या बतलाये हुए सर्वनाम आपसे आप हमारे वाक्यों में आते रहते हैं और सुननेवाले उनका अर्थ समझते चलते हैं। इसके सिवा कुछ अवसरों पर हम बिना किसी संज्ञा का प्रयोग किये भी सर्वनाम का प्रयोग कर जाते हैं। जैसे—जरा दिया-सलाई लाकर इसे जला दो। ऐसे अवसरों पर सुननेवाला अवसर और प्रसंग से ही समझ लेता है कि 'इसे' से हमारा किस वस्तु से अभिप्राय है। हो सकता है कि हम दीया जलाने के लिए कहते हों। यह भी हो सकता है कि हम रद्दी कागज जलाने के लिए कहते हों; या हो सकता है कि हम रसोई बनाना या दूध गरम करना चाहते हों और चूल्हा जलाने के लिए कहते हों। इससे सिद्ध होता है कि सर्वनाम सदा संज्ञाओं के स्थान पर ही नहीं आते। हाँ वे संज्ञाओं के सूचक अवश्य होते हैं—वे किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर संकेत करते हैं। सुनने या पढ़नेवाले अवसर और प्रसंग के अनुसार समझ लेते हैं कि हमारा मतलब किस चीज से है।

हम किसी दूकान पर जाते हैं और दूकानदार से कोई चीज माँगते हैं। वह करता है—वह तो मेरे पास नहीं है। हम समझ

लेते हैं कि उसका 'वह' उसी चीज़ का सूचक है, जो हमने उससे माँगी थी। हम आपसे कोई पुस्तक माँगते हैं। आप कहते हैं—'वह तो खो गई' या 'वह मेरे एक मित्र ले गये हैं।' हम समझ लेते हैं कि 'वह' से आपका अभिप्राय उसी पुस्तक से है जो हम आपसे लेना चाहते हैं। ऐसे अवसरों पर यह समझने में कोई कठिनता नहीं होती कि वाक्य में आया हुआ सर्वनाम किस वस्तु या व्यक्ति का सूचक है।

पर कुछ अवसर ऐसे भी होते हैं, जिनमें सुनने या पढ़नेवालों को कुछ भ्रम हो सकता है। मान लीजिए, हम कहते हैं—'मीना जाति के लोगों के बाल बहुत लम्बे होते हैं। वे राजपूताने भर में फैले हुए हैं।' इससे आप क्या अभिप्राय समझेंगे? यह कि मीना लोग राजपूताने भर में फैले हुए हैं? या यह कि उनके बाल? इस वाक्य की विलक्षण बनावट से यह अर्थ निकलता या निकल सकता है कि मीना जाति के लोगों के बाल ही राजपूताने भर में फैले हुए हैं। व्याकरण के नियम के अनुसार पहले वाक्यांश में आये हुए कर्त्ता के साथ ही दूसरे वाक्यांश में आये हुए सर्वनाम का सम्बन्ध होता है, कर्म के साथ नहीं होता। फिर भी ऊपर दिये हुए वाक्य की बनावट कुछ ऐसी है कि व्याकरण का यह नियम न जाननेवालों को भ्रम हो सकता है। वास्तव में भ्रम इसलिए होता है कि बीच में लम्बे बालों का जिक्र आ गया है। इसलिए इस वाक्य का अच्छा रूप होगा—मीना जाति के लोग राजपूताने भर में फैले हुए हैं। उनके बाल लम्बे होते है। यदि हम कहें—'इन्द्र उन दानवों को नहीं जीत सकते। आप चलकर उनका नाश करें।' तो ऊपर बतलाये हुए नियम के अनुसार इस वाक्य का अर्थ यही होगा कि कहनेवाला इन्द्र का ही नाश कराना चाहता है। यदि वह दानवों का नाश कराना चाहता हो, तो उसे कहना चाहिए—'वे दानव इन्द्र से नहीं जीते जा सकते। आप चलकर उनका नाश करें।' या 'इन्द्र उन दानवों को नहीं जीत सकते। आप चलकर

उन दानवों का नाश करें।' या 'उनका नाश करने में इन्द्र की सहायता करे।'

एक और वाक्य लीजिए। 'उन्होंने चीन से शस्त्र भेजने की व्यवस्था की थी, पर वे बीच ही में पकड़ लिये गये।' नियम के अनुसार इसका यही अर्थ होगा कि जिन्होंने शस्त्र भेजने की व्यवस्था की थी, वही बीच मे पकड़े गये और शस्त्र न भेज सके। इसका यह अर्थ नहीं होगा कि उनके भेजे हुए शस्त्र बीच मे पकड़े गये। फिर भी यदि बीच मे शस्त्रों का जिक्र आ जाने के कारण वाक्य की बनावट से सन्देह की कुछ भी जगह दिखाई दे, तो हम कह सकते हैं—वे स्वयं बीच मे पकड़े गये। 'अपने भाई की बातो से अब उन्हें विश्वास हो गया है कि उनकी शिक्षा व्यर्थ नहीं हो रही है।' कहने से यह स्पष्ट नहीं होता कि इसमें 'उनकी' किसके लिए आया है। इसका सम्बन्ध 'अपने भाई' के साथ है या 'उन्हे' के साथ? साधारणतः इसका अर्थ यही होगा कि उनके भाई की शिक्षा व्यर्थ नहीं हो रही है। इस वाक्य में यदि 'उनकी' की जगह 'हमारी' या 'मेरी' कर दिया जाय, तो उसका सम्बन्ध 'उन्हें' के साथ हो जायगा। यदि हम कहें—'यह नहीं कहा जा सकता कि उनके पापों के क्या फल होगे और वे उनसे कहाँ तक बच सकेगे।' तो इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि 'उनसे' से हमारा अभिप्राय 'पापों' से है या उनके 'फल' से। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि वे अपने पापों से कहाँ तक बच सकेंगे या उनके फलो से। यह ठीक है कि 'उनसे' वास्तव मे 'फल' के तुरन्त बाद आया है, और इसी लिए वह 'फल' की ओर ही संकेत करता है। फिर भी वाक्य को अधिक स्पष्ट करने के लिए उसके अन्तिम अंश का रूप होना चाहिए—वे उन फलों (और यदि हमारा अभिप्राय हो तो—पापो) से कहाँ तक बच सकेंगे। यदि हम किसी वाक्य में साधारण रूप से लिख जायँ—'आप सोचते होंगे कि कांग्रेस ने हमारा बहुत

सम्मान किया है।' तो इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि इसमें का 'हमारा' स्वयं बोलनेवाले के लिए आया है, या उस आदमी के लिए, जिससे वह बात कही जा रही है। इसी लिए अँगरेजी में जहाँ ऐसे अवसरों पर भ्रम हो सकता है, वहाँ सर्वनाम के बाद कोष्ठक में उस व्यक्ति का नाम दे दिया जाता है, जिसके लिए वह सर्वनाम आता है। यह रीति बहुत अच्छी है, और इससे वाक्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। इन सब उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि सर्वनामों का प्रयोग करते समय हमें वाक्य की बनावट पर बहुत ध्यान रखना चाहिए; और उसका रूप ऐसा नहीं रखना चाहिए, जिससे अर्थ के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह हो। यदि कुछ भी सन्देह हो सकता हो तो सर्वनामों के भरोसे ही न रहकर संज्ञाओं का भी फिर से प्रयोग करना चाहिए। केवल सर्वनामों का प्रयोग उसी अवस्था में और उसी रूप में होना चाहिए, जिसमें पढ़नेवालों को कुछ भी भ्रम न हो।

इसी से मिलता-जुलता एक और प्रकार है, जिसमें सर्वनामों के प्रयोग से अर्थ स्पष्ट नहीं होने पाता। जैसे—'उसने प्रार्थना की कि परमात्मा उसे इस योग्य बनावे' कहने से यह स्पष्ट नहीं होता कि इसमें का 'उसे' स्वयं बोलनेवाले के लिए आया है या और किसी के लिए। यदि वह और किसी के लिए आया हो, तब तो वाक्य इसी रूप में रहना चाहिए। पर यदि वह स्वयं बोलनेवाले के लिए हो तो 'उसे' की जगह 'मुझे' होना चाहिए। यही बात—'तब आपने कहा कि आप ब्रिटिश नहीं बल्कि अफगान नागरिक हैं' के सम्बन्ध में भी है। यदि इसमें का 'आप' किसी दूसरे आदमी के लिए हो, तब तो यह वाक्य ठीक होगा; पर यदि यह स्वयं बोलनेवाले के लिए हो तो इसकी जगह 'हम' होना चाहिए। वाक्यों में सर्वनाम की इस प्रकार की भूलें इसी लिए होती हैं कि लोग अपना सीधा-सादा हिन्दी ढंग छोड़कर अँगरेजी ढंग के अप्रत्यक्ष कथन के फेर में पड़ जाते हैं। ऐसी भूलों और ऐसे कथन-प्रकार से बहुत बचना चाहिए।

सर्वनामों के सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य और भी कई बातें हैं। पहली बात यह है कि वाक्यों में एक ही व्यक्ति, वस्तु या घटना के सूचक सर्वनाम एक ही या एक प्रकार के हों। 'मैं' जिस प्रकार का सर्वनाम है, 'हम' उस प्रकार का सर्वनाम नहीं है; और 'वह' जिस प्रकार का सर्वनाम है, 'वे' उस प्रकार का सर्वनाम नहीं है। 'मैं' और 'वह' एक वचन है; 'हम' और 'वे' बहुवचन। यह बात दूसरी है कि कुछ अवसरों पर 'हम' और 'वे' अनेक व्यक्तियों के सूचक न हों, बल्कि केवल अपना बड़प्पन दिखलाने या दूसरों का आदर करने के लिए उनका प्रयोग हुआ हो। ऐसे शब्द कुछ अवसरों पर आदरार्थक होते हैं, पर होते बहुवचन ही हैं। 'मैं सवेरे आप के यहाँ गया था। पर आप घर पर नहीं थे, इसलिए हम लौट आये।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि इसमें पहले 'मैं' आया है और बाद में 'हम'। 'यद्यपि आप वहाँ आधी रात के समय पहुँचे थे तो भी बहुत-से लोग वहाँ बैठे हुए उनकी राह देख रहे थे।' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि इसमें पहले एक व्यक्ति के लिए 'आप' आया है और बाद में उसी व्यक्ति के लिए 'उनके' आया है। इसमें 'उनके' की जगह भी 'आपके' ही होना चाहिए। 'यह बात इतनी स्पष्ट है कि उसको सब लोग समझ सकते हैं।' में 'उसको' की जगह 'इसको' या 'इसे' होना चाहिए। 'गंगा जी और उसकी सहायक नदियाँ' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि पहले तो हम गंगा का आदर करने के लिए उसके साथ 'जी' लगाते हैं और तब 'उसके' कह जाते हैं। या तो हमें कहना चाहिए—'गंगा और उसकी सहायक नदियाँ' या 'गंगा जी और उनकी सहायक नदियाँ।'

सर्वनामों का निर्वाह स्वयं उनके रूप और वचन तक ही नहीं होना चाहिए, बल्कि उनके बाद आनेवाली क्रियाओं तक भी होना चाहिए। 'हम आऊँगा' 'तुम जायगा' और 'वे चला गया' सरीखे

वाक्य कितने भद्दे जान पड़ते हैं ! यह ठीक है कि पुरानी या आरम्भिक हिन्दी में हमें 'आप क्या दोगे ?' और 'आप जो कुछ कहो, सो करूँ।' सरीखे प्रयोग मिलते हैं ; पर ये अच्छे या शुद्ध नहीं माने जा सकते। इन्हें प्रारम्भिक काल के प्रयोग समझकर छोड़ देना चाहिए और इनका अनुकरण नहीं करना चाहिए। हमें सदा—'आप क्या देंगे ?' और 'आप जो कहें, वह करूँ ।' सरीखे प्रयोग ही करने चाहिएँ।

प्रायः लोग सर्वनामों में वचन का ठीक तरह से निर्वाह नहीं करते और कई प्रकार की भूलें करते हैं। बहुत से लोग एक-वचन में भी और बहु-बचन में भी 'यह' 'वह' का ही प्रयोग करते हैं। पर आज-कल 'यह' का बहु० रूप 'ये' और 'वह' का 'वे' ही अच्छा समझा जाता है। 'यह सब पुस्तकें उठा ले जाओ' से 'ये सब पुस्तकें उठा ले जाओ' और 'वह लोग आ गये' से 'वे लोग आ गये' आदि प्रयोग ही आज-कल अच्छे समझे जाते हैं।

कभी-कभी लोग भूल से कुछ विशेष प्रकार के वाक्यों में व्यर्थ ही सर्वनाम का प्रयोग कर जाते हैं। जैसे—एक घर जो खाली पड़ा था, उसे जलाकर राख कर दिया गया। इस वाक्य में 'उसे' व्यर्थ आया है। 'उसे' के बिना ही इसका ठीक और पूरा अर्थ निकलता है। इसी प्रकार 'उनकी लिखी हुई सूचना, जिस पर मजिस्ट्रेट ने आज्ञा लिखी थी, उसको देखकर उन्होंने कहा·· ···।' भी है। इस वाक्य में 'उसको' का प्रयोग व्यर्थ है। साधारणतः हम यही कह सकते हैं—'उनकी लिखी हुई सूचना देखकर उन्होने कहा······।' इस वाक्य के बीच में 'जिस पर मजिस्ट्रेट ने आज्ञा लिखी थी' आ जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए वाक्य का रूप होना चाहिए—'उनकी लिखी हुई सूचना, जिस पर मजिस्ट्रेट ने आज्ञा लिखी थी, देखकर उन्होंने कहा······।' 'कुछ पशु खेती के काम मे आने के सिवा वे

धर्म की दृष्टि से भी पूज्य हैं' में 'वे' ने व्यर्थ ही बीच में आकर वाक्य भद्दा और अशुद्ध कर दिया है।

कुछ अवस्थाओं में लोग सर्वनामों के सम्बन्ध मे एक और प्रकार की भूल कर जाते हैं। वाक्य में जो सर्वनाम चाहिए, वह न रखकर वे कोई और अथवा किसी और प्रकार का सर्वनाम रख जाते हैं। जैसे—उनकी अवस्था इतनी खराब हो गई है कि उसे कहा नहीं जा सकता। पहले तो इस वाक्य में 'उसे' होना ही नहीं चाहिए। पर यदि सर्वनाम रखना ही चाहें तो लिखना चाहिए—वह कही नहीं जा सकती। इसी प्रकार 'तब उन्हें यह भी समझ में आ जायगा' में 'उन्हें' का प्रयोग अशुद्ध है। इसकी जगह 'उनकी' होना चाहिए; और वाक्य का रूप होना चाहिए—तब उनकी समझ में यह भी आ जायगा। 'सोचते सोचते उसे ध्यान में आया' में 'उसे' की जगह 'उसके' होना चाहिए।

प्रायः लोग 'यह-वह' 'इसका-उसका' और 'इनके-उनके' के प्रयोग में भी कई प्रकार की भूलें करते हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान में रखने योग्य मुख्य सिद्धान्त यह है कि प्रायः पास की चीजों का उल्लेख करते समय या वर्त्तमान काल के वर्णनों के साथ तो 'यह', 'इसका' और 'इनके' का प्रयोग होता है; और दूर की चीजों का उल्लेख करते समय या भूतकाल के वर्णनों में 'वह' 'उसका' और 'उनके' का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए; हम कहेंगे—'मैं आपको यह पत्र जो इस रूप में लिख रहा हूँ, इसका कारण यह है कि······।' और 'मैंने आपको वह पत्र जो उस रूप में लिखा था, उसका कारण यह था कि······।' इस प्रकार वाक्यो मे सर्वनामों का निर्वाह आदि से अन्त तक ठीक तरह से हो जाता है और उनमे किसी तरह की गड़-बड़ी नहीं होने पाती।

कभी कभी लोग ऐसे अवसरों पर भी सर्वनाम का प्रयोग नहीं

करते, जहाँ उसका प्रयोग आवश्यक होता है। इससे वाक्य अशुद्ध भी हो जाता है और भद्दा भी। जैसे—जलूस कचहरी गया और वहाँ प्रदर्शन किया। होना चाहिए—जलूस कचहरी गया और वहाँ उसने प्रदर्शन किया। इसी प्रकार 'वह वहाँ जाकर बैठ गया और कहा' भी सर्वनाम न होने के कारण अशुद्ध और भद्दा है। होना चाहिए—'वह वहाँ जाकर बैठ गया और उसने कहा' या 'वह वहाँ जाकर बैठ गया और बोला।'

साधारणतः लोग 'मैं' और अपना या 'हम', 'हमारा' और 'अपना' का प्रयोग करने में भी कई तरह की भूलें करते हैं। जैसे—'इस विषय में मेरे विचार मैं पहले ही प्रकट कर चुका हूँ' या 'मेरी माता की मृत्यु हो जाने पर मैं अपने पिता के पास सोता था'। इनमें से पहले वाक्य मे 'मेरे' की जगह 'अपने' और दूसरे वाक्य में 'मेरी' की जगह 'अपनी' होना चाहिए। ये तो ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें की भूल बहुत स्पष्ट है और जल्दी लोगों के ध्यान में आ जाती है। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ठीक ठीक यह बतलाना बहुत कठिन है कि कहाँ 'मेरा' या 'हमारा' होना चाहिए और कहाँ 'अपना'। 'मेरी पुस्तक मेरे पास है' और 'मैं अपनी पुस्तक अपने पास रखता हूँ'; 'मैं यह नहीं चाहता कि मेरी पुस्तक दूसरों के हाथ में जाय' और 'मैं यह नहीं चाहता कि मैं अपनी पुस्तक किसी को दूँ'; 'मेरी पुस्तक मेरी मेज़ पर रख दो' और 'मेरी पुस्तक अपनी मेज पर रख दो'; मैं अपने भाई के साथ जाऊँगा' और 'मेरा भाई मेरे साथ जायगा'; 'मेरी पुस्तकें मेरे मित्र के पास हैं' और 'मैं अपने मित्र का साथ दूँगा' सरीखे प्रयोग है तो बिलकुल शुद्ध, पर इनके सम्बन्ध में ठीक ठीक यह बतलाना बहुत कठिन है कि इनमे से कुछ स्थानों पर 'मेरा' 'मेरे' आदि क्यों आये हैं और कुछ स्थानों पर 'अपना' 'अपने' आदि क्यों। 'मेरा नौकर मेरे भाई के यहाँ गया है' और मेरा नौकर अपने

भाई के यहाँ गया है' या 'मैंने नौकर को अपने भाई के यहाँ भेजा है' और 'मैंने नौकर को उसके भाई के यहाँ भेजा है' में जो अन्तर है, वह स्पष्ट है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि 'मेरी आँखों पर मेरा विश्वास नहीं होता था' और 'मेरी आँखों पर अपना ही विश्वास नहीं होता था' सरीखे प्रयोग अशुद्ध हैं;और 'अपनी आँखों पर मेरा ही विश्वास नहीं होता था' शुद्ध है। कुछ लोग 'हमारा' के अर्थ में भी 'अपना' का प्रयोग करते हैं। जैसे—'वह डाकिया जो नित्य यहाँ आकर अपनी चिट्ठियाँ दे जाया करता था'। इस प्रकार के प्रयोग भी अशुद्ध और भ्रामक होते हैं। उक्त वाक्य में 'अपनी' की जगह 'हमारी' होना चाहिए। अधिक ज्ञान और अच्छा अभ्यास होने पर विद्यार्थी आप ही यह निश्चय कर सकेंगे कि कहाँ 'मेरा', 'मेरे' आदि होने चाहिएँ और कहाँ 'अपना' 'अपने'आदि। पर हाँ, ये ऐसी बातें हैं, जिनके सम्बन्ध में विद्यार्थियों को सदा बहुत सचेत रहना चाहिए और जहाँ तक हो सके, शुद्ध प्रयोग करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सर्वनामों के प्रयोग का साधारण नियम यह है कि वाक्य मे पहले संज्ञा आती है; और तब उससे सम्बन्ध रखनेवाला सर्वनाम आता है। पर कुछ लोग, अँगरेजी ढंग पर, वाक्य में पहले ही सर्वनाम रखकर तब संज्ञा का प्रयोग करते हैं। जैसे—'उसके पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने गोविन्द से पूछा'। ऐसा नहीं करना चाहिए। हिन्दी ढंग के अनुसार वाक्य में पहले संज्ञा रखकर तब सर्वनाम रखना चाहिए; और इसी लिए इस वाक्य का रूप होना चाहिए—गोविन्द के पास अपनी पुस्तक देखकर मैंने उससे पूछा। कभी कभी लोग संज्ञा के बाद भी फिर वही संज्ञा ले आते हैं और विशेषण नहीं रखते। जैसे—'वाक्य और वाक्य के भेद'। ऐसा करना ठीक नहीं है। लिखना चाहिए—वाक्य और उसके (या उनके) भेद। पर कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें संज्ञा के बाद भी वही संज्ञा रखना आवश्यक होता है। जैसे—मेरे पास जो धेला-पैसा या धेले-पैसे की सम्पत्ति

है, वह सब मैं तुम्हें दे जाऊँगा। इस वाक्य में पहले जो 'धेला-पैसा' आया है, वह अलग चीज है; और बाद में जो 'धेले-पैसे की सम्पत्ति' पद आया है, वह अलग चीज। इसी लिए इसमें 'धेला-पैसा' और 'धेले-पैसे' आया है। यह वाक्य इस रूप में लिखना ठीक नहीं होगा—मेरे पास जो धेला पैसा या उसकी सम्पत्ति है। ऐसे वाक्य का अर्थ यह होगा कि मेरे पास जो सम्पत्ति है, उसका मालिक मैं नहीं हूँ, बल्कि 'धेला-पैसा' है। और इसी विचार से वाक्य का शुद्ध रूप होगा—मेरे पास जो धेला-पैसा या धेले-पैसे की सम्पत्ति है··· ।

कभी कभी लोग संज्ञा के बाद उससे सम्बन्ध रखनेवाला सर्वनाम रखने में भूल कर जाते हैं। जैसे—यह ऐसी पुस्तक है, जिसे सबको देखना चाहिए। इस वाक्य में 'जिसे' का प्रयोग अशुद्ध है; इसकी जगह 'जो' होना चाहिए। ऐसे अवसरों पर 'जिसे' कभी कभी बहुत भ्रामक भी हो सकता है। 'जिसे' का अर्थ होता है—जिसको; और इस विचार से ऊपर के वाक्य का यह भी अर्थ हो सकता है कि 'इस पुस्तक' को ही उचित है या इस 'पुस्तक' का ही कर्त्तव्य है कि वह सबको देखे। पर 'जो' रखने से वाक्य का ऐसा उलटा अर्थ नहीं निकल सकता। इसी लिए वाक्य का ठीक रूप होगा—यह ऐसी पुस्तक है, जो सबको देखनी चाहिए।

सर्वनामों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक बात यह भी है कि 'मैं', 'तू' और 'आप' तो सदा सर्वनाम ही रहते हैं; पर और सर्वनाम संज्ञा के पहले आने पर विशेषण हो जाते हैं। उस अवस्था में वे सर्वनाम नहीं बल्कि 'सार्वनामिक विशेषण' कहलाते हैं। जैसे—'आपने जिस आदमी को बुलाया था, वह आ गया।' में तो 'वह' सर्वनाम है; पर 'वह आदमी अब जाना चाहता है' में, 'वह' सार्वनामिक विशेषण है। यदि हम कहें—'यह पुस्तक किसी को दे देना' तो इसमें का 'किसी' सर्वनाम होगा। पर यदि हम कहें—'यह पुस्तक किसी विद्यार्थी को दे देना' तो इसमें का 'किसी' सार्वनामिक विशेषण हो जायगा।

१०

विशेषण

यदि किसी चौकी पर एक ही कलम और एक ही दावात रक्खी हो और आपसे कहा जाय—'चौकी पर से कलम दावात उठा लाओ' तो आप झट जाकर दोनो चीजें उठा लावेंगे। पर यदि उसी चौकी पर पाँच-सात पुस्तकें भी हों और आप से कहा जाय—'चौकी पर से पुस्तक ले आओ' तो आप कौन-सी पुस्तक लावेंगे ? उस समय आपको पूछना पड़ेगा—कौन सी पुस्तक ? जब आपसे कहा जायगा—'छोटी (या बड़ी) पुस्तक ले आओ', 'लाल (या काली) जिल्दवाली पुस्तक ले आओ' या 'अँगरेजी (या हिन्दी) की पुस्तक ले आओ' तभी आप माँगी हुई पुस्तक ला सकेंगे।

चौकी पर कलम भी एक ही थी और दावात भी एक ही; इसलिए आपके मन में कोई प्रश्न नहीं हुआ। पर पुस्तकें कई थीं, इसलिए आपके मन में प्रश्न हुआ। इससे सिद्ध होता है कि कुछ अवस्थाओं में तो संज्ञाओं से ही काम चल जाता है; पर कुछ अवस्थाओं में केवल संज्ञाएँ पूरा-पूरा काम नहीं करतीं। संज्ञाओं के साथ कुछ ऐसे शब्द या वाक्यांश लगाने पड़ते हैं, जो उन संज्ञाओं की विशेषता या पहचान बतलाते हैं। संज्ञाओं की इस प्रकार की विशेषता या पहचान बतलाने-वाले शब्द 'विशेषण' कहलाते हैं। यदि एक शब्द से विशेषता न प्रकट

हो सकती हो और कई शब्द रखने पड़ते हो, तो उन सब शब्दों के समूह को 'विशेषण वाक्यांश' कहते हैं। ऊपर के उदाहरणों में 'छोटा' 'बड़ी' आदि शब्द विशेषण और 'लाल (या काली) जिल्दवाली' आदि विशेषण-पद या वाक्यांश हैं।

यह समझना भूल है कि किसी वाक्य में बहुत-से विशेषण रखकर ही हम अपना भाव ठीक तरह से प्रकट कर सकते हैं। हमें सदा अवसर के अनुसार ठीक और उपयुक्त विशेषण चुनकर उन्ही का उपयोग करना चाहिए। हमे सदा ठीक स्थान पर उचित विशेषण रखना चाहिए। बिना समझे-बूझे विशेषण पर विशेषण नहीं लादते चलना चाहिए। भाषा को सुन्दर और आकर्षक बनाने के लिए भी कभी कभी विशेषणों का प्रयोग होता है; पर उनका मुख्य काम है—संज्ञाओ का ठीक ठीक, वास्तविक और ऐसा स्वरूप बतलाना, जिसमें सुननेवाले को किसी प्रकार का भ्रम न होने पावे। इसी लिए और शब्दों की तरह विशेषणों का प्रयोग भी बहुत सोच-समझकर और उनके अर्थ का ठीक ध्यान रखते हुए करना चाहिए। ऐसे विशेषणों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिनसे सुननेवाले भ्रम में पड़ जायँ और हमारा ठीक अभिप्राय न समझ सकें। प्रायः लोग लिख या बोल जाते हैं— उनके साथ उचित न्याय किया जायगा। इस वाक्य में 'न्याय' से पहले जो 'उचित' विशेषण आया है, वह इसलिए ठीक नहीं है कि उससे सूचित होता है कि 'न्याय' किसी अवस्था में 'अनुचित' भी हो सकता है। पर वास्तव में 'न्याय' सदा 'उचित' ही होता है, कभी 'अनुचित' नहीं होता। इसी प्रकार 'वह सुन्दर शोभा धारण कर रहा था' में 'सुन्दर' का प्रयोग ठीक नहीं है। 'शोभा' सदा सुन्दर क्या, बहुत सुन्दर होती है। उसके साथ 'सुन्दर' विशेषण लगाकर मानों हम उसका महत्त्व कुछ घटाते ही हैं। ऐसे प्रयोग हमारे अज्ञान के सूचक होते हैं, इसलिए इनसे बचना चाहिए।

'अगला' और 'पिछला' बहुत सीधे और बहुत प्रचलित विशेषण हैं। हम नित्य इनका व्यवहार करते हैं। हम कहते हैं—'अगले महीने हमारी परीक्षा होगी' 'या पिछले सप्ताह मेरे भाई यहाँ आये थे'। ये बातें सुनते ही सुननेवाले समझ लेते हैं कि 'अगले' और 'पिछले' से हमारा क्या अभिप्राय है। फिर भी कुछ अवसरों पर 'अगला' और 'पिछला' से भ्रम हो ही जाता है। जो किसी प्रकार के क्रम में आगे या सामने हो, वह 'अगला' कहलाता है; और जो पीछे हो, वह 'पिछला'। आरम्भ के भाग की चीज 'अगली' और अन्त के भाग की 'पिछली' मानी जाती है। पर चाहे भूल से हो, चाहे किसी और कारण से, कभी कभी 'अगला' का भी वही अर्थ हो जाता है, जो 'पिछला' का होता है। हम प्रायः कहा करते हैं— 'अगले जमाने' में सब चीजें बहुत सस्ती होती थीं। ऐसे अवसरों पर 'अगले जमाने' से हमारा अभिप्राय बीते हुए दिनों से होता है। फिर, हम यह भी कहते हैं— अगली पीढ़ियाँ हमारी ये बातें नहीं मानेंगी। यहाँ 'अगली' का अर्थ होता है—आनेवाली (पीढ़ियाँ)। एक ही शब्द बीते हुए समय का भी सूचक हो गया और आनेवाले समय का भी। ऊपर के उदाहरणों में तो प्रसंग से भी और वाक्यों में आई हुई क्रियाओं के रूपों से भी अभिप्राय स्पष्ट हो गया। पर कुछ अवसर ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमें 'अगला' शब्द से भ्रम हो सकता हो।

'अगला' के तो हमारी भाषा में दो अर्थ प्रचलित हैं, इसलिए उससे भ्रम होना स्वाभाविक है; पर 'पिछला' के तो दो अर्थ नहीं होते। फिर भी कुछ अवसरों पर इस 'पिछला' शब्द से भी भ्रम होता या हो सकता है। यदि हम कहें—'पिछली बातें भूल जाओ' तो हमारा अभिप्राय समझने में आपको भ्रम न होगा। पर यदि हम कहें—'मध्य युग और उसके पिछले सौ वर्षों में हमारे यहाँ सब बातों में धर्म की ही प्रधानता थी' तो 'पिछले सौ वर्षों' से आप क्या अभिप्राय समझेंगे ? मध्य युग के

अन्त के सौ वर्ष या उस युग के आरम्भ होने से पहले के सौ वर्ष? हमारा अभिप्राय तभी स्पष्ट होगा, जब हम कहेंगे—'मध्य युग और उसके अन्त के सौ वर्षों में......' या 'मध्य युग और उसका आरम्भ होने से पहले के सौ वर्षों मे......'। बहुत-से लोग यह समझते हैं कि 'पीछे', 'बाद' और 'उपरान्त' में कोई अन्तर नहीं है। पर इनके प्रयोगों में भी कुछ अन्तर है। यह कहना ठीक नहीं है—दो दिन की बदली के पीछे आज सूरज निकला है। यहाँ 'पीछे' की जगह 'बाद' या 'उपरान्त' होना चाहिए। पर 'इसके पीछे और भी कई उपद्रव लगे हैं' में 'पीछे' का प्रयोग बिलकुल ठीक है। ऐसे अवसरो पर 'पीछे' की जगह 'बाद' या 'उपरान्त' का प्रयोग नहीं हो सकता। इन सब बातों से यही सिद्ध होता है कि यदि विशेषणों का ठीक तरह से और समझ-बूझकर व्यवहार न किया जाय, तो उनसे बहुत भ्रम हो सकता है।

कभी कभी लोग भाषा में सुन्दरता लाने, अपनी बात में कुछ जोर लाने या कुछ शब्दों के प्रयोग के यों ही अभ्यस्त होने के कारण भी कुछ विशेषण लगा चलते है। हम कह जाते हैं–'यह पुस्तक बहुत सुन्दर है', 'यह कपड़ा बहुत बढ़िया है', 'मुझे उनकी मृत्यु से बहुत दुःख हुआ' 'मुझे बहुत प्यास लगी है' आदि। इस प्रकार के विशेषण यदि बिलकुल निरर्थक नहीं तो बहुत-कुछ निरर्थक अवश्य होते हैं। इनका अर्थ तो होता है, पर कोई विशेष अर्थ नहीं होता। इसी लिए ऐसे विशेषणों का प्रयोग हम ऐसी बातों के सम्बन्ध में करते हैं, जिनका विशेष महत्त्व नहीं होता; अथवा ऐसे अवसरों पर करते हैं, जब हम किसी बात को बहुत ही साधारण समझकर उसे विशेष रूप से विचार करने के योग्य नहीं समझते। अर्थात् केवल चलती हुई बातों के लिए या काम चलता करने के लिए हम इस प्रकार के साधारण और प्रायः निरर्थक-से विशेषणो का प्रयोग करते है। पर विशेष महत्त्व की बातों के लिए और अधिक महत्त्व के अवसरों पर हमें बहुत समझ-बूझकर ऐसे चुने हुए

विशेषणों का ही प्रयोग करना चाहिए, जिनसे हमारा अभिप्राय स्पष्ट हो जाय और सुननेवालों को भ्रम न हो।

कभी-कभी ऐसे साधारण शब्दों के रहने या न रहने से भी वाक्य के अर्थ और भाव में बहुत अन्तर हो जाता है। उदाहरण के लिए 'अधिक' शब्द लीजिए। इसका प्रयोग करते समय लोग प्रायः विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते। पर कुछ अवस्थाओ में इसके कारण भी वाक्य में बहुत महत्त्व का अन्तर हो जाता है। मान लीजिए, हम कहते हैं—शब्दों के ये रूप अच्छे माने जाते हैं। इसका आशय यह है कि शब्दो के जिन रूपों का हम जिक्र करते हैं, वे तो अच्छे माने जाते हैं; पर इनके सिवा जो और रूप हैं, वे अच्छे नहीं माने जाते। पर जब हम कहते हैं—'शब्दों के ये रूप अधिक अच्छे माने जाते हैं' तब इसका अर्थ यह नहीं होता कि और रूप अच्छे नहीं माने जाते; बल्कि इसका आशय यह हो जाता है कि और रूप भी अच्छे माने जाते हैं, पर 'ये रूप' उनसे 'अधिक अच्छे' माने जाते हैं। यही बात इस प्रकार के कई दूसरे साधारण विशेषणों के सम्बन्ध मे भी है।

यदि हम कहे—'यह विषय बहुत गम्भीर है' या 'आप जो बातें कह रहे हैं, वे बहुत गम्भीर हैं।' तो हम 'गम्भीर' शब्द का उसके ठीक, प्रचलित और सबके माने हुए अर्थ मे प्रयोग करते हैं। पर यदि हम कहे—'रोगी की अवस्था गम्भीर है' या 'आटे का भाव गम्भीर रूप धारण कर रहा है' तो यही सूचित होगा कि हम 'गम्भीर' शब्द का ठीक अर्थ और प्रयोग नही जानते; और केवल सुन-सुनाकर, विना समझे हुए, दूसरो की देखा-देखी या अँगरेजी के अनुकरण पर ही उसका प्रयोग करते है। ऐसे अवसरों पर 'गम्भीर' की जगह 'विकट' होना चाहिए।

हम 'टेढ़ा' का भी प्रयोग करते हैं, 'तिरछा' का भी; और दोनों को मिलाकर 'टेढ़ा-तिरछा' का भी। इससे हम समझ लेते हैं कि 'टेढ़ा' का भी बहुत-कुछ वही अर्थ है, जो तिरछा का है। पर इन दोनो के अर्थों

ं जो सूक्ष्म अन्तर या भेद है, उसपर जल्दी हमारा ध्यान ही नहीं जाता। पर 'टेढ़ी निगाह' और 'तिरछी निगाह' में दोनों के अर्थों के भेद स्पष्ट हो जाते हैं। 'टेढ़ी निगाह' क्रोध आदि के कारण होती है; और 'तिरछी निगाह' प्रेम के कारण भी होती है, दूसरों की निगाह बचाने के लिए भी होती है और इसी तरह के कुछ दूसरे कामों के लिए भी होती है। बहुत-से लोग 'उधार' और 'मँगनी' का अन्तर नहीं समझते और इनमें से एक का प्रयोग दूसरे की जगह कर जाते हैं। किसी से 'कुछ रुपये उधार' लेना तो ठीक है, पर 'पुस्तक उधार' लेना ठीक नहीं है। 'उधार' का प्रयोग केवल रुपये-पैसे के लिए और 'मँगनी' का प्रयोग चीजों या सामान के लिए होना चाहिए। हम किसी से पुस्तक या कलम तो मँगनी माँग सकते हैं, पर रुपये 'मँगनी' नहीं 'उधार' ही ले सकते हैं। कारण यह है कि जो चीज किसी से लेकर ज्यों की त्यों वही लौटाई जाती हो, वही 'मँगनी' होती है। पर रुपये ज्यों के त्यों या वही नहीं लौटाये जाते, बल्कि उनके बदले दूसरे रुपये लौटाये जाते है। मनुष्य किसी पद, सम्मान वा पुरस्कार का तो 'अधिकारी' होता है, पर दण्ड आदि का वह 'भागी' ही होता है। इसलिए यह नहीं कहना चाहिए—वह कठोर दण्ड का अधिकारी है। ऐसे अवसरों पर 'भागी' का ही प्रयोग ठीक होता है। हाँ, यह कहना अवश्य ठीक है—बहुत-से लोग उन्हीं को राज्य का अधिकारी समझते थे।

विशेषणों का प्रयोग करते समय उनके अर्थों का तो ध्यान रखना ही पड़ता है, उनके स्थान का भी ध्यान रखना पड़ता है। यदि अर्थ या आशय के विचार से तो विशेषण ठीक हो, पर वाक्य में अपने ठीक स्थान पर न हो तो वह वाक्य का अर्थ गड़बड़ा देता है। 'बड़ी गाड़ी की खिड़कियाँ' और 'गाड़ी की बड़ी खिड़कियाँ' तथा 'वे पुराने कपड़े के व्यापारी हैं' और 'वे कपड़े के पुराने व्यापारी हैं' में बहुत अन्तर है। यही बात 'विदेशी सिलाई के तागे' और 'सिलाई के

विदेशी तागे', 'पहले सप्ताह के खेल' और 'सप्ताह के पहले खेल' या 'नई दुनियाँ की कहानियाँ' और 'दुनियाँ की नई कहानियाँ' के सम्बन्ध में भी है। 'मनुष्यों और पशुओं की अनगिनत जानें गईं' कहने से 'अनगिनत मनुष्यों और पशुओं की जानें गईं' कहना अधिक अच्छा भी है और शुद्ध भी। इसलिए विशेषण सदा वहीं रखना चाहिए, जहाँ उसकी जगह या आवश्यकता हो और जहाँ वह अपना ठीक अर्थ दे।

कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं, जिनमें विशेषण का स्थान बदलने पर भी अर्थ में विशेष अन्तर नहीं आता। जैसे—'मैं पुत्रवत् उनकी आज्ञा का पालन करता हूँ' और 'मैं उनकी आज्ञा का पालन पुत्रवत् करता हूँ'। हो सकता है कि सूक्ष्म विचार करने पर इन दोनों के अर्थों में भी कुछ अन्तर निकल आवे, पर वह कोई बहुत बड़ा अन्तर न होगा। पर यदि कहा जाय—'राजा पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन करता था' तो इससे आप क्या अभिप्राय समझेंगे? राजा अपनी प्रजा का पालन उसी तरह करता था, जिस तरह लोग अपने पुत्र का पालन करते हैं? या राजा अपनी प्रजा का उसी तरह पालन करता था, जिस तरह पुत्र अपनी प्रजा का पालन करता है? वाक्य की बनावट से तो अन्तिम अर्थ ही ठीक जान पड़ता है। पर यह अर्थ वास्तविकता से बहुत दूर है। ठीक और संगत अर्थ तो वही है, जो पहले दिया गया है; पर वह अर्थ वाक्य की बनावट से सिद्ध नहीं होता। फिर भी बहुत-से लोग इसी तरह लिखते हुए देखे जाते हैं। पर आधक विचारपूर्वक लिखनेवाले लोग लिखेंगे—'राजा अपनी प्रजा को पुत्रवत् समझता था' या 'राजा अपनी प्रजा का पालन उसी प्रकार करता था, जिस प्रकार पुत्र का पालन किया जाता है'। इस रूप में वाक्य का विस्तार तो कुछ अधिक हो गया है, पर अर्थ में किसी प्रकार के भ्रम के लिए स्थान नहीं रह गया। इसलिए सिद्धान्त यह निकलता है

कि वाक्य भले ही कुछ लम्बा हो जाय, पर अर्थ के विचार से वह बिलकुल ठीक होना चाहिए; और उसमें भ्रम के लिए स्थान नहीं रहना चाहिए।

विशेषणों का प्रयोग करते समय लोग एक और प्रकार से अर्थ का ध्यान छोड़ देते हैं। जैसे—'यह पुस्तक बड़ी अच्छी है' या 'वे बड़े अच्छे आदमी हैं'। इन वाक्यों में आये हुए 'बड़ी' और 'बड़े' शब्द विशेषण हैं और वाक्यों में इनका अशुद्ध प्रयोग हुआ है। होना चाहिए—'यह पुस्तक बहुत अच्छी है' और 'वे बहुत अच्छे आदमी हैं'। एक और प्रकार से लोग 'बड़ा' का अशुद्ध प्रयोग करते हैं। जैसे—उनका लड़का उनसे बड़ा है। इस वाक्य में 'बड़ा' का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। यह पता नहीं चलता कि वह लम्बाई में बड़ा है या अवस्था में। यह ठीक है कि लड़का कभी बाप से अवस्था में बड़ा नहीं हो सकता। फिर भी वाक्य का ऐसा अर्थ तो हो ही सकता है; इसलिए ऐसे स्थानों पर 'बड़ा' की जगह 'लम्बा' होना चाहिए। 'यह बड़ी छोटी बात है' कहना दो कारणों से ठीक नहीं है। एक तो इसमें 'बड़ी' (विशेषण) का प्रयोग अशुद्ध है और उसकी जगह 'बहुत' (क्रिया-विशेषण) होना चाहिए। और दूसरे, 'बड़ी' और 'छोटी' का एक साथ प्रयोग बहुत भद्दा होता और सुनने में बहुत खटकता है।

'बड़ा' और 'बहुत' में बहुत अन्तर है; और इनका प्रयोग भी बहुत समझ-बूझकर करना चाहिए। कुछ स्थानों में केवल 'बड़ा' का प्रयोग होता है और कुछ में केवल 'बहुत' का। पर कुछ स्थान ऐसे भी होते हैं, जिनमें 'बहुत' और 'बड़ा' दोनों का प्रयोग हो सकता है; पर दोनों के अर्थ में अन्तर होता है। जैसे 'बहुत काम' और 'बड़ा काम'। यहाँ 'बहुत' का अर्थ है—दो-चार, दस-बीस या सौ-पचास आदि; और इसी लिए इसके अन्त मे क्रिया भी बहुवचन होती है। जैसे—आज-कल मेरे पास बहुत काम हैं। यहाँ 'बहुत' का अर्थ है—

बहुत-से या बहुतेरे। पर 'बड़ा' का अर्थ है—ऐसा काम, जिसे पूरा करने में अधिक समय और परिश्रम की आवश्यकता हो, या जिसे सब लोग सहज मे न कर सकते हों। जैसे—आज-कल आपने एक बड़ा काम हाथ में ले रक्खा है। यहाँ 'बड़ा' के पहले हम 'बहुत' भी लगा सकते हैं और कह सकते हैं—आज-कल आपने एक बहुत बड़ा काम हाथ में ले रक्खा है। इस वाक्य में 'बहुत' लगने से काम का महत्त्व और भी बढ़ गया है। इस सम्बन्ध मे ध्यान रखने की मुख्य बात यह है कि 'बहुत' विशेषण भी है और क्रिया-विशेषण भी। हम यह भी कहते हैं—'इस काम में बहुत रुपये लग गये' और यह भी कहते है—'यह मकान बहुत अच्छा है'। पर 'बड़ा' विशेषण ही है और इसलिए उसका प्रयोग केवल संज्ञाओं से पहले होना चाहिए; विशेषण, क्रिया या क्रिया-विशेषण के पहले नहीं होना चाहिए।

'बहुत' के साथ उसकी मात्रा घटाने-बढ़ाने के लिए कुछ और शब्द भी लगते हैं। जैसे—बहुत अधिक, बहुत-सा, बहुत-कुछ। पर इन सबसे सूचित होनेवाली मात्राओ में बहुत अन्तर होता है। 'बहुत' का अर्थ है—जितना चाहिए, उससे अधिक। 'बहुत अधिक' का अर्थ है, जितना चाहिए, उससे कहीं अधिक। 'बहुत-सा' का अर्थ भी प्रायः वही होता है, जो 'बहुत' का होता है; फिर भी 'बहुत' से जिस मात्रा का बोध होता है, 'बहुत-सा' उससे कुछ कम या उससे मिलती-जुलती मात्रा का सूचक है। पर जब हम कहते है 'बहुत-कुछ' तो उसका आशय 'बहुत-सा' से कुछ कम और 'बहुत' से कुछ अधिक होता है। अर्थों के इस प्रकार के अन्तरो पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है।

और भी कई ऐसे विशेषण है, जिनका प्रयोग लोग प्रायः बिना समझे-बूझे और अशुद्ध रूप में कर जाते हैं। जैसे—'मुझे उस समय भारी प्यास लगी' और 'आपके व्यवहार से मुझे भारी दुःख हुआ'। इन वाक्यो में 'भारी' का प्रयोग अशुद्ध है। इसकी जगह 'बहुत' होना

चाहिए। 'उनका धैर्य समाप्त हो गया' में 'समाप्त' शब्द ठीक नहीं है। 'समाप्त' तो वह चीज होती है, जो अधिक मात्रा में इकट्ठी हो और धीरे-धीरे खर्च होती हुई अन्त मे बिलकुल न रह जाय। पुस्तक तो 'समाप्त' हो सकती है और धन भी 'समाप्त' हो सकता है; पर बुद्धि या घर 'समाप्त' नहीं होता। हाँ, जब 'घर' शब्द से हम घर में रहने-वाले सब लोगों का अर्थ लेते हैं, तब अवश्य कहते हैं—'हैजे में सारा घर समाप्त हो गया' या 'घर का घर समाप्त हो गया'। पर यदि बर-सात मे किसी का घर बैठ जाय तो यह नही कहते—आज उनका घर समाप्त हो गया। यह तो तभी कहा जायगा, जब घर गिरने से सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय या घर के सब या अधिकतर आदमी मर जायँ।

कुछ लोग विशेषणों के रूप बनाने मे भी कई प्रकार की भूलें करते हैं। प्रायः लोग हिन्दी के तद्भव शब्दों से उसी प्रकार विशेषण बना लेते है, जिस प्रकार संस्कृत के तत्सम शब्दो से बनते है। यदि हम संस्कृत के 'पुष्प' से 'पुष्पित' या 'लेखन' से 'लिखित' बनावे तो ठीक ही है। पर यदि हम हिन्दी के 'सुधार' से 'सुधारित', 'जड़ना' से 'जड़ित' (जैसे—रत्नजड़ित) और 'अचम्भा' से 'अचम्भित' बनाने लगें तो ऐसे प्रयोग अशुद्ध होंगे। इसी लिए केवल देखा-देखी ऐसे रूपों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। सोच-समझकर या बड़ों से पूछकर ही उनका प्रयोग करना चाहिए।

प्रायः लोग संस्कृत के विशेषणो के प्रयोग में भी कई प्रकार की भूले कर जाते हैं। संस्कृत में शुद्ध रूप 'निर्दय' और 'निरपराध' हैं; पर प्रायः लोग 'निर्दयी' और 'निरपराधी' लिख जाते है। संस्कृत का शुद्ध रूप 'क्रुद्ध' है; पर लोग लिख जाते हैं 'क्रोधित'। बहुत-से लोग 'व्याप्त' को 'व्यापित' और 'ग्रस्त' को 'ग्रसित' लिख जाते हैं। ऐसा नही होना चाहिए। हम जो कुछ लिखें उसके सम्बन्ध में हमें पहले अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि वह शुद्ध है या नहीं। और

जो कुछ निश्चित रूप से हमें शुद्ध मालूम हो, वही लिखना चाहिए।

कभी कभी लोग ऐसे अवसरो पर भी संज्ञाओं का प्रयोग कर जाते हैं, जहाँ वास्तव में विशेषण होना चाहिए। जैसे—'इस दवा से सब प्रकार के रोग नाश हो जाते हैं' कहना अशुद्ध है। इसमें 'नाश' की जगह 'नष्ट' होना चाहिए। या यदि हम 'नाश' का प्रयोग करना चाहें, तो हमें कहना होगा—इस दवा से सब प्रकार के रोगों का नाश हो जाता है। 'मेरे भाई ने यह पुस्तक आपको समर्पण की है' में 'समर्पण' की जगह 'समर्पित' होना चाहिए। 'इस विषय में निश्चय रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता' में 'निश्चय' की जगह 'निश्चित' और 'पुस्तक उनको प्रदान हुई है' में 'प्रदान' की जगह 'प्रदत्त' होना चाहिए।

विशेषणों के आगे-पीछे शब्द या उपसर्ग और प्रत्यय भी बहुत समझ-बूझकर लगाने चाहिएँ। प्रायः लोग लिख जाते हैं—सबसे पहली बात यह है......। ऐसे अवसरों पर, जब कि 'पहला', (या पहली) विशेषण के रूप में आया हो, 'सबसे' का प्रयोग भद्दा और अशुद्ध होता है। हाँ, जहाँ क्रिया-विशेषण के रूप में 'पहले' आवे, वहाँ उससे पहले 'सबसे' लगाया जा सकता है। जैसे—'सबसे पहले आप हमें यह बतलावें कि......।' यों तो यह भाव भी केवल 'पहले आप हमें यह बतलावें......।' कहकर प्रकट किया जा सकता है; पर ऐसे अवसरो पर 'सबसे' के प्रयोग से कुछ जोर आ जाता है। यह कहना भी ठीक नहीं है—तुम सबसे अधिक सुन्दरतम हो। 'सुन्दरतम' का अर्थ ही है—सबसे सुन्दर। इसलिए या तो कहना चाहिए—'तुम सबसे सुन्दर हो' या 'तुम सुन्दरतम हो'। इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—दोनों में यह उत्तमतर है; क्योंकि 'उत्तम' का अर्थ ही है—सबसे अच्छा। और जो सबसे अच्छा हो, उसे किसी की तुलना में 'उत्तमतर' कहना ठीक नहीं। कहना चाहिए—इन दोनों में यह उत्तम है।

११

क्रियाएँ

जिस प्रकार 'संज्ञा' का अर्थ नाम है, उसी प्रकार 'क्रिया' का अर्थ काम है। हमारे सामने बहुत-सी चीजें होती हैं; और उन सब चीजों के अलग अलग नाम होते हैं। इसी प्रकार हमारे सामने बहुत-से काम भी होते हैं; और उन सब कामों के भी अलग-अलग नाम होते हैं। खाना, पीना, लिखना, उठना, चलना, बैठना, सोना, दौड़ना, घूमना, लड़ना, खेलना, माँगना, देना, मिलना, बाँधना आदि सब काम ही हैं; और उन सब कामों के यही नाम हैं। हम जो काम करते हैं, उनके नाम ही व्याकरण में 'क्रिया' कहलाते हैं।

ऊपर हमने कामों के जो नाम दिये हैं, उन सब में एक बात समान रूप से दिखाई देती है। वह यह कि सबके अन्त में 'ना' लगा है। इसलिए प्रायः व्याकरणों में यह बतलाया गया है कि यह 'ना' प्रत्यय है, जो खा, पी, पढ़, लिख, उठ, बैठ, सो, दौड़ आदि धातुओं में लगा दिया गया है; और इस प्रकार उन धातुओं से ये क्रियाएँ बना ली गई हैं। कुछ लोग इससे भी और आगे बढ़कर यह कहते हैं कि स्वयं खाना, पीना, पढ़ना, लिखना, बोलना, देना आदि रूप ही धातु हैं; और बतलाते हैं कि इन्हीं रूपों में विकार होने से क्रियाएँ बनती हैं। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ये दोनों बातें कुछ ठीक नहीं जान पड़तीं। संस्कृत में तो अवश्य धातुएँ है (या मान ली गई हैं ?); और उन्हीं धातुओं मे उपसर्ग और प्रत्यय लगने से संस्कृत के सब शब्द बने हैं। पर हमारी हिन्दी में धातुओंवाला तत्त्व है ही नहीं। हाँ, हमारी भाषा संस्कृत से, कई रूप बदलने के बाद, बनी है; इसी लिए संस्कृत भाषा के बहुत-से तत्त्व हमारी भाषा में

आप से आप आ गये हैं। बस इतना ही; इससे अधिक और कुछ नहीं।

असल बात यह है कि संस्कृत मे बहुत-से ऐसे शब्द हैं, जिनके अन्त में 'न' है ; और कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जिनके अन्त में, संस्कृत व्याकरण के नियम के अनुसार, 'न' के बदले 'ण' है। प्रायः वे सब शब्द, व्याकरण के विचार से, भाववाचक संज्ञाओं के अन्तर्गत आते हैं। जैसे—कर्त्तन, वर्त्तन, पठन, लेखन, पालन, मिलन, शयन, भाषण, घर्षण, वर्षण आदि। हमारी सम्मति में हमारे यहाँ की सब क्रियाएँ सीधी इन्हीं भाववाचक संज्ञाओं से बनी हैं। उनमे से कुछ तो ज्यों की त्यों रह गई हैं और कुछ के रूप, बीच में होनेवाले परिवर्त्तनों के कारण, कुछ बदल गये हैं। हमारे यहाँ कर्त्तन से कतरना, वर्त्तन से बरतना, पठन से पढ़ना, लेखन से लिखना, पालन से पालना, मिलन से मिलना, शयन से सोना, भाषण से भाखना (पुरानी हिन्दी), घर्षण से घिसना, वर्षण से बरसना आदि क्रियाएँ बन गई हैं। न तो हमारे यहाँ धातु के झगड़े आये हैं, न हम उनके फेर में पड़े हैं। हमारे यहाँ बने-बनाये भाववाचक शब्द थे; और उन्हीं से हमारी क्रियाएँ बनी हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ की भी बहुत-सी क्रियाएँ भाववाचक सज्ञाओं के रूप में चलती हैं। जैसे—'दिन-रात खेलना अच्छा नहीं,' 'उस समय तुम्हारा बोलना बुरा हुआ', 'उन्हें नाचना नहीं आता' और 'तुम्हारा हमसे मिलना उन्हें अच्छा नहीं लगता'। इनमें 'खेलना' 'बोलना' 'नाचना' और 'मिलना' शब्द क्रियाओं के साधारण रूप में होने पर भी संज्ञाओं के रूप में आये हैं; और इसी लिए कुछ लोग ऐसे रूपों को क्रियार्थक संज्ञा भी कहते हैं। पर हैं ये भाववाचक संज्ञाएँ ही।

हम ऊपर कह आये हैं कि 'ना' हमारे यहाँ प्रत्यय के रूप में नहीं था, बल्कि यह संस्कृत की कुछ क्रियार्थक अथवा भाववाचक संज्ञाओं के साथ आया था। परन्तु आगे चलकर कुछ ऐसी बातें हो

गईं, जिनसे उसने बहुत-कुछ प्रत्यय का रूप धारण कर लिया। धीरे-धीरे लोग अपने सुभीते के विचार से और काम चलाने के लिए कुछ विशेषणों और संज्ञाओं से भी क्रियाएँ बनाने लगे। जैसे—साठ से सठियाना, छेद से छेदना, धिक्कार से धिक्कारना आदि। जब प्राचीन हिन्दी कविता का विशेष प्रचार होने लगा, तब कवियों ने छन्दों के विचार से इसी प्रकार की और भी बहुत-सी क्रियाएँ बनाईं। जैसे—उद्धार से उद्धारना, अनुराग से अनुरागना आदि। फिर जब मुसलमान इस देश में आये, तब उनके प्रभाव से हमारी भाषा का रूप भी कुछ-कुछ बदलने लगा। अरबी का तो संस्कृत से कोई मेल नहीं मिलता, पर फारसी और संस्कृत की बहुत-सी बातें आपस में मिलती-जुलती हैं; यहाँ तक कि दोनों के सैकड़ों-हजारों शब्द भी बहुत कुछ एक से हैं। संस्कृत में घोड़े को 'अश्व' कहते हैं, फारसी में 'अस्प'; संस्कृत में जिसे 'गौ' कहते हैं, फारसी में वह 'गाव' है। नाम, दाम आदि कुछ शब्द तो फारसी और संस्कृत में एक से हैं ही। इसका कारण यह है कि फारसी भी मूलतः हमारी संस्कृत से ही निकली हुई और एक शाखा के रूप में दूसरे देश में, जो पहले किसी समय हमारा ही था, बोली जानेवाली भाषा है। इसी लिए जिस प्रकार हमारे यहाँ पालन, मिलन, पठन आदि सैकड़ों-हजारों नकारान्त शब्द हैं, उसी प्रकार फारसी में भी हैं। जैसे खुर्दन (खाना), नोशादन (पीना), नविश्तन (लिखना), गुजाश्तन (छोड़ना), गुजरानीदन (बिताना), कशीदन (खींचना), फरमूदन (आज्ञा देना), आमोख्तन (पढ़ना) आदि। और फारसी में भी ये सब, हमारे यहाँ की ऐसी संज्ञाओं की तरह, क्रियार्थक या भाववाचक संज्ञाएँ हैं।

जब मुसलमान लोग इस देश में बस गये, तब बहुत-सी बातों में हमारा-उनका लेन-देन होने लगा। भाषा का क्षेत्र भी इस लेन-देन से अछूता न बचा। उन्होंने हमारी भाषा को एक नये साँचे में ढालना

आरम्भ किया। क्रियार्थक संज्ञाओं का अन्तवाला 'न' तो संस्कृत औ
फारसी दोनों में समान था, और हिन्दी क्रियाओं में उसने 'ना' व
रूप धारण कर ही रक्खा था; इसलिए इस 'ना' को प्रत्यय का रू
मिल गया। उन्होंने अपने यहाँ के 'फरमूदन' शब्द से फरमाना
'गुजरानीदन' से गुजारना आदि कुछ नई क्रियाएँ बनाईं। फि
इसी ढंग पर 'शर्म' से शरमाना, 'खरीद' से खरीदना, 'खर्च' से खर
चना, 'बदल' से बदलना, 'दाग' से दागना, 'दफन' से दफनाना आदि
और बहुत-सी क्रियाएँ उसी प्रकार बन गईं जिस प्रकार हमारे यहाँ भी
'हाथ' से हथियाना, 'अपना' से अपनाना, आदि क्रियाएँ बनी थीं। और
इन्हीं सब क्रियाओं के आधार पर, जो हमारे यहाँ की क्रियाओं और
भाषा में बिलकुल मिल-जुल गई थीं, 'ना' प्रत्यय माना जाने लगा।

इस पुस्तक के विवेचन का यह विषय नहीं है कि 'ना' प्रत्यय है या नहीं; अथवा वह कैसे और कब बना। यह तो क्रियाओं के रूप के प्रसंग में एक बात आई थी, जो विद्यार्थियों की जानकारी के लिए यहाँ बतला दी गई है। हमारा मुख्य विषय तो यह बतलाना है कि भाषा में क्रियाएँ क्या और किस प्रकार का काम करती हैं; और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भूलों से किस प्रकार बचना चाहिए। इसलिए अब हम अपने प्रकृत विषय पर आते हैं।

मान लीजिए कि मैं कुछ देर से आपके पास बैठा हुआ बातें कर रहा हूँ। अब मैं उठकर जाना चाहता हूँ। मैं आपसे कहता हूँ—मैं जाता हूँ। अथवा आप मुझसे भेंट करने के लिए आते हैं और आपको मेरे आसरे दस-पाँच मिनट बैठना पड़ता है। मैं आकर आपसे क्षमा माँगता हूँ और कहता हूँ—मैं सोता था। अब 'मैं जाता हूँ' और 'मैं सोता था' दोनों इस दृष्टि से पूरे वाक्य हैं कि इनसे आपको कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

'मैं जाता हूँ' या 'मैं सोता था' कहने से तो आपने पूरी बात

समझ ली—आपको पूरा सन्तोष हो गया। पर यदि आप किसी के घर पहुँचकर उसे पुकारें और वह ऊपर से उत्तर दे—'मैं खाता हूँ' तो भी आप उसकी पूरी बात समझ लेंगे; पर आपके मन में एक जिज्ञासा हो सकती है। आप मन में सोच सकते हैं—यह क्या खाता है? दाल-रोटी खाता है, चने खाता है या रेवड़ियाँ खाता है? अर्थात्, यह क्या चीज खाता है? अथवा आपके पास पहुँचकर वह आपसे कहे—'मैं पढ़ता था' तो भी आपके मन में जिज्ञासा होगी कि यह क्या पढ़ता था। हिन्दी पढ़ता था, अँगरेजी पढ़ता था, पुस्तक पढ़ता था, समाचार-पत्र पढ़ता था; अथवा किसी की चिट्ठी पढ़ता था? यदि वह कहे—'मैं लिखता था' तो भी आपके मन में अनेक प्रश्न होंगे। यह किसी को पत्र लिखता था, कोई लेख लिखता था, या बही-खाता लिखता था? आदि।

अब यहाँ दो प्रकार के वाक्य आपके सामने हैं। पहले प्रकार में तो 'मैं जाता हूँ' और 'मैं सोता था' हैं; और दूसरे प्रकार में 'मैं खाता था', 'मैं पढ़ता था' और 'मैं लिखता था' हैं। पहले प्रकार के वाक्य सुनते ही आपका समाधान हो जाता है और आपको कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती। पर दूसरे प्रकार के वाक्यों से आपका समाधान नहीं होता—आपके मन में कुछ जिज्ञासा होती या रह जाती है। यहीं से क्रियाओं के वे दो भेद आरम्भ होते हैं जिन्हें व्याकरण में 'अकर्मक' और 'सकर्मक' कहते हैं। अकर्मक क्रियाएँ तो स्वयं पूरी होती हैं और किसी स्पष्टीकरण या व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखतीं; पर सकर्मक क्रियाएँ तब तक पूरी नहीं होतीं, जब तक उनमें वह तत्व न हो, जिसे व्याकरण में 'कर्म' कहते हैं, और जिसके न होने या होने से ही क्रियाएँ अकर्मक या सकर्मक होती हैं। अकर्मक और सकर्मक की पहचान के लिए अँगरेजी व्याकरणों में बतलाया हुआ एक बहुत सीधा और सुगम उपाय यह है कि जिस क्रिया के सम्बन्ध मे प्रश्न हो सके—क्या? (क्यों, कैसे, कहाँ आदि नहीं) और साथ

ही उस 'क्या ?' का कुछ उत्तर भी हो सके, वही सकर्मक क्रिया है। यदि क्रिया के सम्बन्ध में यह 'क्या ?' वाला प्रश्न या इसका कोई उत्तर न हो सके, तो वह अकर्मक होगी।

अकर्मक और सकर्मक का यह विवेचन तो हुआ, फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं, जिन्हें स्पष्ट किये बिना यह अधूरा ही रह जायगा। जिस परिस्थिति में हमने ऊपर 'मैं जाता हूँ' वाला उदाहरण दिया है, उस परिस्थिति के सिवा कुछ और ऐसी परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं, जिनमें 'मैं जाता हूँ' वाक्य भी अधूरा हो सकता है; और इसके सम्बन्ध में भी आपके मन में जानने की कोई बात रह सकती है। मान लीजिए कि आप कहीं बाहर से आ रहे हैं और मैं कहीं बाहर जा रहा हूँ। स्टेशन पर हम लोगों की भेंट हो जाती है। उस समय यदि मैं आपके पूछने पर केवल इतना कह दूँ—'मैं जाता हूँ' तो आपके मन में अवश्य यह जानने की इच्छा होगी कि यह कहाँ जाता है। उस समय मुझे कहना पड़ेगा—मैं प्रयाग (कलकत्ते या बम्बई) जाता हूँ। 'जाना' है तो अकर्मक क्रिया, फिर भी ऐसे अवसरों पर उसके साथ किसी स्थान के नाम की आवश्यकता रह ही जाती है। व्याकरण के नियम के अनुसार स्थान का वह नाम 'कर्म' तो हो नहीं सकता; इसलिए ऐसे अवसरों पर आनेवाली कुछ क्रियाएँ अकर्मक तो रहती हैं, पर अपूर्ण अकर्मक कहलाती हैं; और जिन संज्ञाओं अथवा विशेषणों से उनकी पूर्त्ति होती है, उन्हें 'पूर्त्ति' कहते हैं। 'मैं प्रयाग जाता हूँ' में 'प्रयाग' पूर्त्ति है; और 'वे विद्वान् हैं' में 'विद्वान्' पूर्त्ति है। सकर्मक क्रियाओंवाले वाक्यों में इस प्रकार की पूर्ति उनमें आये हुए कर्म से ही हो जाती है; पर उनमें ऐसी संज्ञाओं और विशेषणों को पूर्ति नहीं बल्कि 'पूरक' कहते हैं।

आगे बढ़ने से पहले यहाँ एक और बात बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। वह यह कि 'मैं जाता हूँ', 'मैं खाता हूँ', 'मैं सोता

था' और 'मैं पढ़ता था' से आपको पूरी या अधूरी बात तो मालूम हो ही जाती है; इनमें के 'हूँ' और 'था' से आपको काल का भी निश्चित ज्ञान हो जाता है। 'हूँ' कहने से आप समझ लेते हैं कि यह बात वर्त्तमान काल की है; और 'था' कहने से यह समझ लेते हैं कि यह बात बीते हुए समय या भूतकाल की है। और यदि कहा जाय—'मैं जाऊँगा (या सोऊँगा)' तो क्रिया के इस रूप से ही आप यह भी समझ लेंगे कि यह बात भविष्यत् काल से सम्बन्ध रखती है। अर्थात् वाक्यों में क्रियाओं के रूप ही काल के सूचक भी होते हैं। यही नहीं, क्रियाओं के रूप कर्त्ता के लिंग और वचन के भी सूचक होते हैं। जैसे—'मैं आता हूँ' और 'वे जाती हैं' की क्रियाएँ कर्त्ता के लिंग और वचन का भी ज्ञान कराती हैं। कभी-कभी क्रिया के रूप स्वयं कर्त्ता के भी सूचक होते हैं। जैसे, यदि हम कहें—'जो कहूँ, वह करो' तो सुननेवाले झट समझ जायँगे कि मेरा अभिप्राय है—जो मैं कहूँ, वह तुम करो। अर्थात् वाक्य में 'मैं' और 'तुम' न रहने पर भी क्रिया के रूपों से ही उनका बोध हो जाता है। फिर एक बात और है। यदि हम कहें—'वह जहाँ हों, वहाँ जाओ।' तो इसका आशय यह होगा कि हम यह नहीं जानते कि वह कहाँ हैं। अर्थात् वाक्यों की क्रियाओं से ही उनके सम्बन्ध की बहुत सी बातें जानी जाती हैं। भाषा में क्रियाओं का इतना महत्व है!

इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य दूसरी मुख्य बात यह है कि कुछ ऐसी क्रियाएँ भी हैं, जो कभी अकर्मक होती हैं और कभी सकर्मक। 'मैं आपसे कल मिलूँगा' में 'मिलना' अकर्मक है और 'मुझे आपका पत्र मिला' में 'मिलना' सकर्मक। 'मेरा हाथ खुजला रहा है' में 'खुजलाना' अकर्मक क्रिया के रूप में आया है; और 'मैं अपना हाथ खुजला रहा हूँ' में वही 'खुजलाना' सकर्मक क्रिया हो गया है। इसी प्रकार 'मैं भूलता हूँ; आप कल नहीं, परसों आये थे।' में

'भूलना' अकर्मक है; और 'मैं पुस्तक घर भूल आया हूँ' में 'भूलना' सकर्मक है। इसी प्रसंग में यह बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि कभी कभी कुछ अकर्मक क्रियाओं से भी सकर्मक क्रियाएँ बनती हैं। जैसे 'मै चलता हूँ' में 'चलना' अकर्मक क्रिया है; और गाड़ी चलाता हूँ' में 'चलाना' सकर्मक क्रिया है, जो अकर्मक क्रिया 'चलना' से बनाई गई है। पर इन सब बातों का यह अर्थ नहीं है कि हम जब चाहें, तब किसी अकर्मक क्रिया से सकर्मक क्रिया और किसी सकर्मक क्रिया से अकर्मक क्रिया बना लें। 'बोलना' सदा सकर्मक रूप में ही रहता है; उसका कभी अर्कमक रूप 'बुलना' नहीं होता। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है—उनके मुँह से सदा शुद्ध किताब ही बुलती है। यह ठीक है कि कुछ अवसरों पर और कुछ विशेष अर्थों में 'बोलना' का प्रयोग भी अकर्मक क्रिया के रूपमें होता है ; जैसे—'तरकारी में मिर्च बोल रही है' अथवा 'जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले' पर एक तो इन प्रयोगों में 'बोलना' कुछ विशेष अर्थ (अपना परिचय देना) में आया है; और दूसरे, उसका रूप फिर भी 'बोलना' ही रहा है, 'बुलना' नहीं हुआ। मुहावरों में अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं के प्रयोग के कारण अर्थ भी बिलकुल बदल जाते हैं। जैसे—'अब जाकर उनकी मेहनत ठिकाने लगी है (सफल हुई है)' और 'उन्होंने कई सिपाहियों को ठिकाने लगाया (मारडाला)'। इसके सिवा प्रायः सकर्मक क्रियाओं से प्रेरणार्थक रूप भी बनते हैं। जैसे—ढूँढ़ना से ढुँढ़वाना और पढ़ना या पढ़ाना से पढ़वाना आदि। पर अकर्मक क्रियाओं के प्रेरणार्थक रूप नहीं होते। अतः हमें निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि कौन-सी क्रियाएँ सदा अकर्मक रहती हैं और कौन-सी सदा सकर्मक; कौन-सी क्रियाएँ अकर्मक और सकर्मक दोनो होती हैं, और किन अकर्मक क्रियाओं या संज्ञाओं से किस प्रकार सकर्मक क्रियाएँ अथवा किन सकर्मक क्रियाओं

से अकर्मक क्रियाएँ बनती हैं। यदि ये सब बातें जाने बिना हम लिखने लगेंगे—'यदि तुम यहाँ से नहीं जाओगे, तो मैं तुम्हें अब जवाऊँगा' या 'वह वहाँ से हँसती-खुशती चली गई' तो लोग हँसेंगे ही।

क्रियाओं के सम्बन्ध में ध्यान रखने की मुख्य बात यह है कि उनका उपयोग बहुत समझ-बूझकर किया जाना चाहिए। 'करना' और 'होना' ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनका उपयोग बहुत अधिक अवसरों पर होता या हो सकता है। कुछ ही ऐसे शब्द हैं, जिनके साथ इनका उपयोग नहीं होता, कुछ दूसरी क्रियाएँ लगती हैं। पर कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं, जो ऊपर से देखने पर तो बहुत-कुछ एक-सा अर्थ प्रकट करनेवाली जान पड़ती हैं; पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उनके अर्थों में बहुत-कुछ अन्तर होता है। उदाहरण के लिए 'टूटना' और 'फूटना' या 'तोड़ना' और 'फोड़ना' लीजिए। हम कहते हैं—'उसका हाथ टूट गया' और 'उसकी आँखें फूट गईं'। हम यह नहीं कह सकते—'उसका हाथ फूट गया' और 'उसकी आँखें टूट गईं'। क्यों? इसी लिए कि 'टूटना' और बात है, 'फूटना' और बात। दूसरा उदाहरण लीजिए—खींचना और तानना। हम कहते हैं—तम्बू ताना गया और कनात खींची गई। इस वाक्य में 'खींचना' की जगह 'तानना' और 'तानना' की जगह 'खींचना' रखने से काम नहीं चल सकता। इसी प्रकार गाड़ी 'खींची' जाती है और लाठी 'तानी' जाती है। क्यो? इसी लिए कि 'खींचना' में समतल पर किसी चीज को अपनी ओर बलपूर्वक लाने का भाव है; और 'तानना' में पहले कुछ ऊपर की ओर ले जाने और तब अपनी ओर लाने का भाव है। कुछ इसी तरह की बात 'लड़का दौड़ा हुआ घर गया' और 'लड़का मारे डर के भाग गया' के सम्बन्ध में भी है। 'दौड़ना' अपनी इच्छा से होता है। किसी के कहने या विवश करने पर भी कोई दौड़ सकता है। पर 'भागना' किसी के डर से या अपने आप को किसी बात से

बचाने के लिए ही होता है। इसी लिए हम कहते हैं—वह पढ़ने से भागता है; यह नहीं कहते—वह पढ़ने से दौड़ता है। कोई काम जल्दी कराना होता है तो कहा जाता है—नौकर को दौड़ा दो। पर यदि नौकर को किसी प्रकार हटाना होता है, तो कहा जाता है—नौकर को भगा दो। इसी लिए 'भागकर घर से पुस्तक ले आओ' सरीखे वाक्य अशुद्ध होते हैं। दूध 'उबाला' जाता है; और खीर 'पकाई' जाती है। कोई यह नहीं कहता—मैं दूध पकाता हूँ और खीर उबालता हूँ। कारण यही है कि दोनों क्रियाओं के कार्य अलग अलग प्रकार के हैं। हम दूकानदार से कहते हैं—'यह धोती कटी है, दूसरी दो।' और धोबी से कहते हैं—'तुम नया कुरता फाड़ लाये।' यहाँ 'कटना' और 'फटना' (या फाड़ना) का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। हम किसी को थप्पड़ 'मारते' हैं और छड़ियों से 'पीटते' हैं। लकड़ी आग में 'जलती' है और आग की लपट से शरीर 'झुलसता' है। हम दीवार में कील 'ठोकते' हैं और अँगूठी में नगीना 'जड़ते' हैं। इसी प्रकार के अन्तर 'घुमाना' और 'मोड़ना', 'चखना' और 'खाना', 'उठना' और 'उभरना', 'गिरना' और 'पड़ना' आदि में भी हैं।

साधारणतः 'त्यागना' या 'त्याग देना' का भी वही अर्थ है, जो 'छोड़ना' या 'छोड़ देना' का है। फिर भी हम यह तो कह सकते हैं—पुलिस ने चोर को छोड़ दिया; पर यह नहीं कह सकते—चोर को त्याग दिया। इसी लिए कि 'छोड़ना' कुछ और प्रकार की क्रिया है, 'त्यागना' कुछ और प्रकार की। इसी लिए 'दुखियों का भय हटानेवाले राजा तुझे बचावेंगे' में 'हटाने' का प्रयोग ठीक नहीं है। यहाँ 'हटानेवाले' की जगह 'दूर करनेवाले' होना चाहिए। 'राजा ने धनुष खींच लिया' भी इसी प्रकार का भद्दा और अशुद्ध वाक्य है। धनुष 'खींचा' नहीं बल्कि 'उठाया' या 'चढ़ाया' जाता है। 'ये मुकदमे देखने के लिए नये मजिस्ट्रेट आये हैं' में 'देखने' की जगह 'सुनने' होना

चाहिये। और 'अध्यापकों ने हड़ताल मनाई' में तो 'मनाई' का कुछ अर्थ ही नहीं है। मनाया तो त्योहार जाता है; या खुशी या छुट्टी मनायी जाती है; हड़ताल तो केवल की जाती है या होती है। यदि थोड़ा ध्यान दिया जाय, तो ये अन्तर स्पष्ट हो जाते हैं। और जब अन्तरों का ध्यान रखकर क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है, तभी भाषा ठीक और मुहावरेदार होती है।

कुछ इसी प्रकार की भूल उस समय भी होती है, जब वाक्य में संज्ञाएँ तो कई अथवा कई प्रकार की होती हैं और उनके अन्त में क्रिया एक ही रखी जाती है। 'वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने पुस्तकें और चित्र तोड़-फोड़ डाले' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि चित्र तो तोड़े-फोड़े जाते हैं, पर पुस्तकें तोड़ी-फोड़ी नहीं, बल्कि फाड़ी जाती है। और चित्र भी उसी दशा में तोड़े-फोड़े जाते हैं, जब वे चौखटों में जड़े हों या उन पर शीशे मढ़े हों। नहीं तो खाली चित्र भी, वे कागज पर छपे या कपड़े पर बने हों तो, पुस्तकों की तरह फाड़े ही जाते हैं, तोड़े या फोड़े नहीं जाते। 'सरकार भूख और रोग दूर करेगी' का तो यही अर्थ होगा कि सरकार 'भूख' को ही न रहने देगी; अर्थात् लोगों को भूख लगने ही न देगी। इसलिए कहना चाहिए—सरकार अन्न की कमी और रोग दूर करेगी। अथवा—सरकार भूखों के पेट भरेगी और रोगियों के रोग दूर करेगी। 'वह सीना-पिरोना, संगीत, कसीदा और हिन्दी पढ़ी है' में की अन्तिम 'पढ़ी है' क्रिया की संगति 'हिन्दी' के साथ बैठती है, पर 'सीना-पिरोना, संगीत और कसीदा' के साथ नहीं बैठती। यदि हम कहें—'वह सीना-पिरोना संगीत और कसीदा काढ़ना जानती है' तो वाक्य कुछ ठीक हो सकता है, पर उसमें इसलिए खटक रह जाती है कि काढ़ना का सम्बन्ध 'संगीत' से भी लगाया जा सकता है। इसलिए वाक्य का अच्छा रूप होगा—'वह सीना-पिरोना, कसीदा काढ़ना और संगीत जानती

है……'। 'दरजी हमारे कपड़े और कुम्हार हमारे खिलौने गढ़ता है' भी ऐसा ही वाक्य है। इसे ठीक करने के लिए हमें 'कपड़े' के बाद 'सीना' शब्द रखना पड़ेगा; क्योंकि 'खिलौने' तो गढ़े जाते हैं, पर कपड़े 'सीये' (या यदि वाक्य में 'जुलाहा' हो तो 'बुने') जाते हैं।

हमें इस बात का तो ध्यान रखना ही पड़ता है कि कहाँ किस क्रिया का प्रयोग उचित है; इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि कहाँ अकर्मक क्रिया का प्रयोग होना चाहिए और कहाँ सकर्मक क्रिया का। पर कभी कभी लोग भूल से एक ही वाक्य के आरम्भ में एक प्रकार की और अन्त में दूसरे प्रकार की क्रिया रख देते हैं, जिससे वाक्य भद्दा और अशुद्ध हो जाता है। जैसे—वह नागरी लिपि में होना चाहिए और साथ में उसका हिन्दी अनुवाद भी देना चाहिए। इसके पहले अंश में 'होना' अकर्मक क्रिया और पिछले अंश में 'देना' सकर्मक क्रिया है; इसलिए यह वाक्य ठीक नहीं है। यदि इसमें 'देना' की जगह 'रहना' हो तो वाक्य ठीक हो जाय। 'वह बदन अकड़कर लेट गया' में 'अकड़ना' अकर्मक क्रिया इसलिए ठीक नहीं है कि उसके पहले 'बदन' (कर्म) आ चुका है। इस वाक्य में 'अकड़कर' की जगह 'अकड़ाकर' होना चाहिये। 'स्वतन्त्रता लड़कर मिलेगी' में 'लड़कर' पूर्व-कालिक क्रिया ठीक नहीं है। इसका अर्थ तो यह होगा कि स्वतन्त्रता पहले लड़ लेगी तब मिलेगी। होना चाहिए—स्वतन्त्रता लड़ने से (या पर) मिलेगी। 'आँसू गैस छोड़कर उपद्रवी पकड़े गये' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि आँसू-गैस छोड़नेवाले कोई और थे, पकड़े जानेवाले कोई और। और इसीलिए वाक्य के पहले अंश की पिछले अंश के साथ संगति नहीं बैठती। या तो होना चाहिए—'आँसू-गैस छोड़कर उपद्रवियों को पकड़ा' या 'आँसू-गैस की सहायता से उपद्रवी पकड़े गये'। यही बात 'गाड़ी के नीचे दबकर लड़के की मृत्यु हो गई' के सम्बन्ध में भी है। इसमें 'दबकर' की जगह 'दबने से' होना चाहिए।

यदि अकर्मक और सकर्मक का प्रश्न न भी हो तो भी वाक्य में
दि से अन्त तक एक ही रूप की क्रियाएँ होनी चाहिएँ। 'यदि आप
ा आदमी भेज देते तो मैं उसे रख लूँगा' इसलिए ठीक नहीं है कि
समें 'रख लूँगा' का 'भेज देते' के साथ मेल नहीं बैठता। 'भेज देते'
तो 'रख लेता' का ही मेल बैठता है। यदि इस वाक्य में 'भेज देते'
ी जगह 'भेज दें' हो तो अन्त में 'रख लूँ' होना चाहिए। और यदि
सकी जगह 'भेज देंगे' हो तो 'रख लूँगा' से मेल बैठेगा। 'जहाँ मैं
ूकता हूँ, वहाँ पैर टूटे' भी इसी प्रकार का वाक्य है। इसमें या तो
ान्त में 'टूटे' की जगह 'टूटते हैं' होना चाहिए या बीच में 'चूकता
' की जगह 'चूका' होना चाहिए। 'सरकार के पास प्रान्त भर से
ो समाचार मिले हैं' में 'मिले हैं' की जगह इसलिए 'आये हैं' या
पहुँचे हैं' होना चाहिए कि आरम्भ में 'सरकार के पास' है। या
यदि हम अन्त में 'मिले हैं' ही रखना चाहें तो हमें वाक्य के आरम्भ
में 'सरकार के पास' की जगह 'सरकार को' रखना पड़ेगा। 'ईश्वर
करे, वे पुराने दिन फिर लौट आवें, जिनमें हिन्दुओं और मुसलमानों
में एका हो' में 'हो' की जगह 'था' होना चाहिए, क्योंकि चर्चा उन
पुराने दिनों की है, जिनमें एका था।

इन्हीं से मिलती-जुलती और भी ऐसी अनेक अवस्थाएँ हैं, जिनमें
क्रियाओं का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। जैसे—'उनका विचार था
कि हम ऐसा करें' और 'उनकी इच्छा थी कि हम ऐसा करेंगे'। इनमें
से पहले वाक्य में 'करें' की जगह 'करेंगे' और दूसरे वाक्य में 'करेंगे'
की जगह 'करें' होगा। यह अन्तर इन वाक्यों मे आये हुए 'विचार'
और 'इच्छा' शब्दों के कारण पड़ता है। 'विचार' कुछ-कुछ निश्चय
तक पहुँचती हुई और इच्छा से बहुत आगे बढ़ी हुई चीज है। हमारी
'इच्छा' होती है कि हम कोई काम करें। इसमें कोई काम करने को
जी भर चाहता है, उसमें निश्चय का कोई भाव नहीं होता। पर जब

हम कहते हैं—'हमारा विचार है (या था)' तब मानों हम कोरी 'इच्छा' से बहुत कुछ आगे बढ़कर 'निश्चय' के पास तक पहुँच जाते हैं। अर्थात् हम कुछ सोच समझ-कर पूरा निश्चय तो नहीं, पर बहुत कुछ निश्चय-सा कर लेते हैं; और इसी लिए पहले वाक्य में 'करें' की जगह 'करेंगे' होना चाहिए।

कभी कभी क्रियाओं का ठीक प्रयोग न होने के कारण वाक्य तो भद्दा हो ही जाता है, उसका ठीक अर्थ समझने में भी बहुत भूल हो सकती है। जैसे, यदि हम कहें—'उस मकान में गोली चलायी गई और उसे खाकर एक आदमी जमीन पर गिर पड़ा' तो इसमें के 'खाकर' का कुछ और अर्थ हो सकता है। यह समझा जा सकता है कि जिस प्रकार दवा की गोली खाई जाती है, उसी प्रकार वह गोली खाकर एक आदमी जमीन पर गिर पड़ा। इसलिए ऐसे अवसर पर 'उसे खाकर' की जगह 'उसके लगने से' होना चाहिए।

कुछ अवसरों पर वाक्य में एक क्रिया के तुरन्त बाद दूसरी क्रिया आती है। कभी कभी एक ही क्रिया हमारा पूरा विचार या उसका काल ठीक तरह से प्रकट नहीं करती; इसलिए हमें उसके साथ कोई और क्रिया रखनी पड़ती है। ऐसी क्रिया संयुक्त क्रिया कहलाती है। 'मैं जाता था' और 'मैं जा रहा था' में बहुत अन्तर है। यह अन्तर इन दो वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है—(१) 'जब मैं जाता था, तो वह मुझे देखकर खड़ा हो जाता था।' और (२) 'जब मैं जा रहा था, तब वह मुझे रास्ते में मिला।' इस प्रकार की क्रियाओं के भेद आपने व्याकरण में पढ़े ही होंगे। अतः यहाँ इनका अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं। इनके सम्बन्ध में ध्यान रखने की मुख्य बात यह है कि इनके प्रयोग मे भूल करने से कभी कभी वाक्य का अर्थ बिलकुल बदल जाता है। एक बार एक सज्जन उदयपुर गये थे। वहाँ की यात्रा का जो वर्णन उन्होंने किया था, उसमें उन्होंने लिखा था—मैंने

वह गुफा भी देखी, जहाँ राणा प्रताप छिपे हुए थे। इसमें संयुक्त क्रिया 'हुए' बहुत ही भ्रम उत्पन्न करनेवाली है। इससे वाक्य का आशय यह हो जाता है कि लेखक ने जिस समय वह गुफा देखी थी, उस समय राणा प्रताप उसमें छिपे हुए थे। पर लेखक गये थे राणा प्रताप के मरने के सैकड़ों वर्ष बाद; इसलिए वाक्य में 'छिपे हुए थे' की जगह केवल 'छिपे थे' होना चाहिए था। एक बार एक सज्जन ने अपने व्याख्यान में कहा था—हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हम अपनी स्वतन्त्रता खो न सकें। पर इस वाक्य में 'खो न सकें' की जगह 'खो न दें' या 'खो न बैठें' होना चाहिए था। 'सकना' का प्रयोग तो उसी अवस्था में होना चाहिए, जब हम कोई काम अपनी इच्छा से पूरा करना चाहें। पर अपनी स्वतन्त्रता खोने का कभी कोई अपनी इच्छा से प्रयत्न नहीं करता; हाँ, उसे बचाने का प्रयत्न अवश्य करता या कर सकता है। 'कोई चिन्ता उन्हें सता नहीं सकती थी' कहना तो बहुत कुछ ठीक हो सकता है; पर 'कोई चिन्ता उन्हें सता नहीं पाती थी' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि इसका आशय यह हो जायगा कि 'चिन्ता' उन्हें सताने का प्रयत्न तो करती थी, पर सफल नहीं होती थी। 'तुम तो उनसे मिले हो' और 'तुम तो उनसे मिले हुए हो' में अर्थ के विचार से बहुत अन्तर है। पहले वाक्य का अर्थ यह है कि उनसे तुम्हारी भेंट हो चुकी है। पर दूसरे वाक्य का अर्थ है–तुम उनके पक्ष या गुट में हो। अब यदि हम इन दोनों वाक्यों की जगह कहें–'तुम तो उनसे मिल चुके हो' तो इसका आशय दूसरे वाक्य से तो बिलकुल अलग होगा ही, पहले वाक्य से भी कुछ अलग होगा। 'तुम तो उनसे मिले हो' में उतना निश्चय या जोर नहीं है, जितना 'तुम तो उनसे मिल चुके हो' में है। 'रात भर वे लोग वहाँ धरना देते रहे' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि धरना कोई बार-बार दी जानेवाली चीज नहीं है। जब से आदमी किसी जगह अड़कर बैठता

है, तब से उस समय तक का उसका बैठा रहना 'धरना' कहलाता है, जब तक वह वहाँ से उठ नहीं जाता। 'धरना देते रहे' का अर्थ यह हो जायगा कि वे एक बार कुछ देर तक धरना देने के बाद वहाँ से उठ जाते थे और बार बार ऐसा ही करते थे। पर धरना में यह बात नहीं होती। हाँ, 'रात भर वे लोग वहाँ पहरा देते रहे' कहना इसलिए ठीक है कि पहरा बार बार इधर से उधर घूम-घूमकर दिया जाता है।

कभी कभी लोग संयुक्त क्रियाओं का बिलकुल व्यर्थ प्रयोग भी कर जाते हैं। जैसे—रूस की जिद के आगे ब्रिटेन को झुक जाना ही पड़ा। इस वाक्य में संयुक्त क्रिया 'जाना' बिलकुल व्यर्थ है; 'झुक जाना' की जगह 'झुकना' होना चाहिए। कुछ लोग व्यर्थ ही एक साथ कई क्रियाओं का प्रयोग करके वाक्य बहुत भद्दा और जटिल कर देते हैं। जैसे—जब तुम बड़े हो गये रहोगे। यही बात सीधी तरह से यों कही जा सकती है—'जब तुम बड़े होगे' या 'जब तुम बड़े हो जाओगे'। इसी प्रकार 'खड़े रह गये हुए साईस को उसने पुकारा' की जगह 'रुके हुए (या रुक जानेवाले) साईस को उसने पुकारा' कहना कहीं अधिक अच्छा और हलका है। और 'पलक गिरा लेकर उसने कहा' से 'पलक गिराकर उसने कहा' कहना अधिक सुन्दर है। 'इतना कह डालकर वह वहाँ से चलता हुआ' कितना भद्दा है! और 'इतना कहकर वह वहाँ से चलता हुआ' कितना अच्छा है! 'बुलावा आ पहुँच सकता है' कितना टेढ़ा और 'बुलावा आ सकता है' कितना सीधा है! 'यह काम जल्दी ही हो जा सकता है' में 'जा' बिलकुल व्यर्थ है। या तो 'हो जायगा' होना चाहिए या 'हो सकता है' रहना चाहिए। 'वह आपका काम करा दे सकता है' में 'दे' बिलकुल व्यर्थ है; और 'वहाँ काम की कोई चीज मिल जा सकती है' में 'जा' की कोई आवश्यकता नहीं है।

१२

वचन

यों तो हम किसी की कही हुई बात को भी 'वचन' कहते हैं ; जैसे—यह व्यासजी का वचन है ; और किसी के किये हुए वादे को भी 'वचन' कहते है ; जैसे—उन्होंने यह काम करने का वचन दिया है। पर व्याकरण में 'वचन' का अर्थ इन सबसे निराला है। साधारणतः व्याकरणो में यही कहा जाता है कि संज्ञा, क्रिया, विशेषण या क्रिया-विशेषण के जिस रूप से संख्या का ज्ञान होता है, उसे वचन कहते है। पर इतने से विद्यार्थियों का सन्तोष नहीं हो सकता; इसलिए हम यह बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से बतलाते हैं।

मान लीजिए कि आप किसी दुकान पर लिखने के लिए कापी लेने जाते हैं। वहाँ जाकर आप कहते हैं—हमे कापी चाहिए। दुकानदार पूछेगा—कितनी कापियाँ ? आप कहेंगे—एक या दो या चार या दस या जितनी आपको चाहिएँ। जब आपको एक कापी की आवश्यकता होगी, तब आप कहेंगे—एक कापी दो। पर यदि आपको एक से अधिक कापियों की आवश्यकता होगी, तो आप कहेंगे—दो कापियाँ, चार कापियाँ आदि। आप यह भी कह सकते हैं—एक दरजन या एक कोड़ी। अथवा यदि कापियाँ रुपये के हिसाब से बिकती हो तो आप यह भी कह सकते हैं—एक रुपये की या दो रुपये की। पर सभी अवस्थाओ में एक कापी के लिए आपको कहना पड़ेगा—कापी; और एक से अधिक के लिए कहना पड़ेगा—कापियाँ। यदि आपने किसी बरात में दस घोड़े देखे होंगे तो आप यह नहीं कहेंगे—हमने बरात में दस घोड़ा देखा था। क्यो ? इसी लिए कि यह वचन के

विचार से अशुद्ध है। आपका वाक्य तभी शुद्ध होगा, जब आप कहेंगे—हमने बरात में दस घोड़े देखे थे। आप यह भी नहीं कह सकते—हमने बरात में दस घोड़ा देखा था; बल्कि आपको कहना पड़ेगा—देखे थे। इससे सिद्ध होता है कि एक हो तो 'घोड़ा' और एक से अधिक हो तो 'घोड़े'; और एक हो तो 'देखा था' और एक से अधिक हो तो 'देखे थे' कहना ही शुद्ध होगा। हम कहते हैं—'हम मोटे कपड़े पहनते हैं' और 'हम इतने मोटे कपड़े पहनते हैं, जितने और लोग नहीं पहनते'। इन वाक्यो में 'वचन' के कारण ही 'मोटा' (विशेषण) तो 'मोटे' हो गया और 'इतना' (क्रिया विशेषण) 'इतने' हो गया। इससे सिद्ध होता है कि 'वचन' संख्या का बोध करानेवाला वह तत्त्व है, जिसके कारण संज्ञा, क्रिया, विशेषण और क्रिया-विशेषण के रूप बदल जाते हैं। व्याकरण मे इस प्रकार के रूप-परिवर्त्तन को 'विकार' कहते हैं; और जिन शब्दो के रूप मे इस प्रकार परिवर्त्तन होते हैं, वे 'विकारी' कहलाते हैं। यहाँ हम एक और बात बतला देना आवश्यक समझते हैं। वह यह कि वचन का सम्बन्ध वस्तु की संख्या से होता है, उसकी मात्रा या परिमाण से नहीं। हम सदा यही कहेंगे—सेर भर आलू से काम न चलेगा। यह नहीं कहेंगे—सेर भर आलुओं से काम न चलेगा। कारण यही है कि व्याकरण की दृष्टि से हमें 'सेर भर' का ही ध्यान रखना पड़ेगा, 'आलू' का नहीं। हाँ जब उस 'सेर' के साथ भी कोई संख्या लगेगी, तब वाक्य पर उसका अवश्य प्रभाव पड़ेगा। जैसे—तुमने सेर भर की जगह दो सेर आलू भेज दिये। यही बात 'एक बोरा मैदा आया है' और 'चार बोरे मैदा आया है' के सम्बन्ध में भी है।

इसके सिवा वचन के कारण सर्वनाम के रूपों में भी परिवर्त्तन होता है। 'वह' का बहुवचन 'वे' और 'यह' का बहुवचन 'ये' होता है। 'किस' का बहुवचन 'किन' और 'उस' का बहुवचन 'उन' होता

है। लिंग के कारण क्रियाओं के जो रूप बदलते हैं, उनपर भी वचन का प्रभाव पड़ता है। जैसे—'वह जाता था' और 'वे जाते थे'; 'वह जाती थी' और 'वे जाती थीं। इस प्रकार वचन का प्रभाव प्रायः सारे वाक्य पर पड़ता है।

संस्कृत में तीन वचन होते हैं—एक-वचन, द्विवचन और बहुवचन। मराठी में भी इसी प्रकार तीन वचन होते हैं। पर हिन्दी में तथा बहुत-सी दूसरी भाषाओं में दो ही वचन होते हैं—एक-वचन और बहु-वचन। जहाँ हमारा अभिप्राय किसी एक चीज से होता है, वहाँ हम एक-वचन का प्रयोग करते हैं; और जहाँ एक से अधिक चीजों का अभिप्राय होता है, वहाँ बहुवचन का। तीसरा वचन, जो द्विवचन कहलाता है और जो केवल दो चीजों का बोधक होता है, हिन्दी में नहीं है।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि वचन के सम्बन्ध में लोग किस प्रकार की भूलें करते हैं। प्रायः लोग लिख और बोल जाते हैं—दोनों की दशा एक-सी है। वास्तव में होना चाहिए—दोनो की दशाएँ एक सी हैं। कारण यह है कि 'सा' इस बात का सूचक है कि दोनों की दशाएँ हैं तो वास्तव में अलग अलग, पर प्रायः एक-समान है। यदि हम कहें—'दोनों की दशा एक है' तो इसमें कुछ भी भूल न होगी; क्योंकि हम जानते या मान लेते हैं कि उनमें कुछ अन्तर नही है। पर जब हम 'सा' का प्रयोग करते हैं, तब मानों हम निश्चित रूप से मानते हैं कि दोनो की दशाएँ अलग हैं, पर हैं दोनों एक तरह की। इसी लिए दोनों की दशाएँ एक-सी हैं कहना ही ठीक है। 'राजा साहब बजरों पर सवार होकर मेला देखने जाते थे' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि राजा साहब तो एक ही थे। वे 'बजरों' पर कैसे सवार होते थे? वे तो जब सवार होते होंगे, तब एक ही बजरे पर होते होंगे। एक आदमी एक-साथ कई बजरों पर सवार नहीं हो

सकता। हाँ, उसके साथ कई बजरे हो सकते हैं। इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—वृक्षो पर कोयल कूक रही थी। वृक्ष तो हुए कई, और कोयल हुई एक। एक कोयल कई वृक्षों पर कैसे कूक सकती है? इसलिए होना चाहिए—वृक्षों पर कोयलें कूक रही थीं; या—वृक्ष पर कोयल कूक रही थी। 'स्थान स्थान पर तिरंगा झंडा' नहीं बल्कि 'तिरंगे झंडे' होना चाहिए। 'मुझे आपके पत्र से प्रसन्नता और दुःख दोनों हुआ है' में 'हुआ है' की जगह 'हुए हैं' होना चाहिए। 'मैं आप को इसका गुण-दोष बतलाऊँगा' में 'इसका' की जगह 'इसके' होना चाहिए; क्योंकि गुण और दोष दो चीजें हैं, एक नहीं। 'उन लोगों को रस्सियों में बाँधकर कुत्ते की तरह घसीटा गया' भी ठीक नहीं है। होना चाहिए—कुत्तो की तरह······। 'उन्होंने गोले और तोपों से आक्रमण किया' में 'गोले' की जगह 'गोलो' होना चाहिए। 'वहाँ मुझसे और उससे क्रमशः निम्न लिखित बात हुई' भी इसलिए ठीक नहीं है कि 'क्रमशः' से जान पड़ता है कि क्रम से कई बातें हुई। इसलिए इस वाक्य में 'बात हुई' की जगह 'बातें हुई' होना चाहिए। यदि अधिक वर्षा के कारण किसी नगर की सड़को पर पानी इकट्ठा हो जाय, तो 'सड़कें नहर बन गई" की जगह 'सड़कें नहरें बन गई' कहना ही ठीक होगा। पहला वाक्य तो उसी अवस्था में ठीक हो सकता है, जब सब सड़को पर के पानी ने मिलकर एक नहर का रूप धारण कर लिया हो। पर ऊपर बतलाई हुई अवस्था में 'नहर' न कहकर 'नहरें' ही कहना ठीक होगा।

'मनुष्य में ऐसे बहुत-से गुण हैं, जो उनके पूर्वजों में नहीं थे।' में या तो 'मनुष्य' की जगह 'मनुष्यो होना चाहिए या 'उनके' की जगह 'उसके'। 'वह मैं ही हूँ, जिन्होंने आपको बचाया था' मे 'जिन्होंने' की जगह 'जिसने' होना चाहिए। 'सभी श्रेणी के लोग वहाँ आये थे' में 'श्रेणी' की जगह 'श्रेणियों' होना चाहिए। 'सुनते-सुनते कान पक गया'

की जगह 'सुनते-सुनते कान पक गये' होना चाहिए ; क्योंकि मनुष्य दोनों कानों से सुनता है, न कि एक कान से ; और इसी लिए सुनाई पड़नेवाली बातों का प्रभाव भी दोनों कानों पर पड़ेगा, किसी एक कान पर नहीं। 'यह नाना प्रकार का रूप धारण करता है' की जगह 'यह नाना प्रकार के रूप धारण करता है' होना चाहिए। 'सब सदस्यों के पास निमंत्रण भेजा गया' कहना इसलिए ठीक है कि यहाँ 'निमंत्रण' शब्द में सब लोगों को बुलाने का भाव एक साथ आ गया है। पर 'सब सदस्यों के पास निमंत्रण-पत्र भेजा गया' उसी अवस्था में कहना ठीक होगा, जब उसके पास एक ही (संख्या के विचार से एक, न कि एक ही प्रकार का) निमंत्रण-पत्र भेजा गया हो। नहीं तो 'सब सदस्यों के पास निमंत्रण-पत्र भेजे गये' कहना ही ठीक होगा। 'हममें से हर एक इसके लिए प्रयत्न कर सकते हैं' इसलिए ठीक नहीं है कि 'हर एक' केवल एक का सूचक है; इसलिए 'प्रयत्न कर सकते हैं' की जगह 'प्रयत्न कर सकता है' होना चाहिए। 'इन दोनों स्थानों पर भी एक-एक घटनाएँ हुईं' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'एक एक' के बाद संज्ञा और क्रिया एक वचन में होनी चाहिए, बहुवचन में नहीं। इसलिए 'घटनाएँ हुईं' की जगह 'घटना हुई' रखना ही ठीक होगा। 'इन दोनों स्थानों पर भी दो घटनाएँ हुईं' कहना अवश्य ठीक है। 'नित्य कोई न कोई ऐसी बातें होती रहती हैं' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'कोई न कोई' सदा 'एक' का सूचक होता है, 'अनेक' का नहीं। इसलिए कहना चाहिए—नित्य कोई न कोई ऐसी बात होती रहती है। 'इस मत-भेद के कारण हर आदमी अपने अपने विचारों के अनुसार काम कर सकता है' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'हर' तो एक-वचन का सूचक है और 'अपने अपने' बहुवचन का। इसलिए यदि हम वाक्य में 'हर' रक्खें तो हमें 'अपने अपने' की जगह केवल 'अपने' लिखना होगा। या यदि हम

'अपने अपने' ही रखना चाहें तो हमें 'हर आदमी' की जगह 'सब लोग' रखना पड़ेगा; और इसी के अनुसार अन्त में क्रम से या तो 'काम कर सकता है' होगा या 'काम कर सकते हैं'। फिर 'विचार' और 'विचारों' का प्रयोग भी अलग अलग अवस्थाओं में ठीक हो सकता है। जहाँ कोई अपने एक विचार के अनुसार कार्य करे, वहाँ 'विचार' और जहाँ एक से अधिक विचारों के अनुसार कार्य करे, वहाँ 'विचारों' रखना होगा। 'मेरे बहुत-से विचारों को लोग व्यर्थ का समझते हैं' भी ठीक नहीं है; क्योंकि यहाँ 'विचार' तो 'बहुत-से' हैं पर 'का' एकवचन है; इसलिए 'व्यर्थ का' की जगह 'व्यर्थ के' होना चाहिए। यों देखने में वाक्य का इस प्रकार का रूप भले ही खटकता हो, पर व्याकरण की दृष्टि से है शुद्ध।

पर हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'सब लोग अपनी सम्मति दें' और 'सब लोग अपनी-अपनी सम्मति दें' में अर्थ के विचार से बहुत अन्तर है। यदि हमारा अभिप्राय यह हो कि सब लोग आपस में मिलकर एक निश्चय कर लें और तब उस निश्चय के अनुसार सब लोग मिलकर एक ही सम्मति दें, तब तो 'सब लोग अपनी सम्मति दें' कहना ही ठीक होगा। पर यदि हमारा अभिप्राय यह हो कि सब लोग अलग-अलग सम्मति दें, तब 'सब लोग अपनी-अपनी सम्मति दें' कहना ही ठीक होगा।

यदि वाक्य में कई संज्ञाएँ एक साथ आवें और अर्थ के विचार से सब संज्ञाएँ एक ही तरह की हों, तब उन संज्ञाओं के रूप भी एक-से होने चाहिएँ। यह कहना ठीक नहीं है—'उन्होंने बैल, घोड़े और हाथियों के व्यापार से बहुत धन कमाया था'; क्योंकि व्यापार के लिए जिस प्रकार बहुत-से हाथी आवश्यक हैं, उसी प्रकार बहुत-से बैल घोड़े भी। इसलिए वाक्य का ठीक रूप होगा—उन्होंने बैलों, घोड़ों और हथियों के व्यापार से बहुत धन कमाया था। 'ग्रामीण

और डाकुओं में लड़ाई' कहना तभी ठीक होगा, जब ग्रामीण एक ही हो और डाकू कई हों। यदि ग्रामीण भी कई हों तो हमें 'ग्रामीणों और डाकुओं में लड़ाई' कहना पड़ेगा। 'अनेक स्थानों से ऐसा समाचार आता रहता है······।' की जगह 'अनेक स्थानों से ऐसे समाचार आते रहते हैं······।' कहना ठीक है; क्योंकि अनेक स्थानों से आनेवाले समाचार भी अनेक ही होंगे। यदि सब स्थानों से एक ही समाचार आता हो, तो भी इसलिए हमें 'ऐसे समाचार' रखना पड़ेगा कि वाक्य के अन्त में हम कहते हैं—आते रहते हैं। और इससे यह सूचित होता है कि आज एक स्थान से समाचार आया, कल दूसरे से और परसों तीसरे से। और इसलिए समाचार एक से होने पर भी संख्या में एक से अधिक होंगे। इसी सिद्धान्त के अनुसार 'इस दो वर्षों की अवधि में······' कहना भी ठीक नहीं है। होना चाहिए—'इन दो वर्षों की अवधि में······;' या 'दो वर्षों की इस अवधि में······।'

इसी के साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए की जब कई चीजों के नामों में अन्तवाले नाम के पहले 'और' होता है, तब अन्त में उनके सम्बन्ध की क्रिया बहुवचन में होती है। पर जब कई चीजों के नामों में से अन्तवाले नाम से पहले 'या' होता है, तब अन्त में उनके सम्बन्ध की क्रिया एकवचन में होती है। जैसे—(क) बँगला, मराठी और गुजराती भाषाएँ कई प्रान्तों में बोली जाती हैं। (ख) बँगला, मराठी या गुजराती भाषा कई प्रान्तों में बोली जाती है। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक वाक्य में कई ऐसी संज्ञाएँ आती हैं, जिनमें से कुछ बहुवचन और कुछ एक-वचन होती हैं। ऐसी अवस्थाओ में कुछ लोग अन्तिम क्रिया का स्वरूप स्थिर करने में गड़बड़ा जाते हैं। जैसे—सब लोग और मैं वहाँ आ पहुँचे। पर ऐसे प्रयोग अशुद्ध होते हैं। वस्तुतः अन्तिम क्रिया का वचन भी वही होना चाहिए, जो उससे ठीक पहले आई हुई संज्ञा का हो। जैसे—उसके पास दो गौएँ और

एक घोड़ा है। अथवा उसके पास एक घोड़ा और दो गौएँ हैं। इसी प्रकार 'महाराज के साथ दो दासियाँ और पद्मावती भी थीं' अथवा 'महाराज के साथ पद्मावती और दो दासियाँ भी थीं' होना चाहिए। इन सब उदाहरणों में अन्तिम क्रियाएँ भी उसी वचन में हैं, जिस वचन में उनसे ठीक पहले आई संज्ञाएँ हैं; और इसी नियम का सब जगह पालन होना चाहिए।

जब एक वाक्य में दो या दो से अधिक व्यक्तियों या चीजों के नाम आते हैं, तब वचन के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता होती है। जैसे—'राम और कृष्ण गया' नहीं कहते, 'राम और कृष्ण गये' ही कहते हैं। इसी प्रकार 'राम और सीता आई' नहीं बल्कि 'आईं' होता है; क्योंकि इन वाक्यों में दो दो व्यक्तियों के नाम आये हैं, और दोनों के बीच 'और' है। यह तो साधारण बात हुई। पर इसी तरह के कुछ ऐसे अवसर भी होते हैं, जिनमें इस नियम का पालन होने पर वाक्य कुछ भद्दा हो जाता है। जैसे—'तीन झोपड़ियाँ और एक खेमा जल गये' या 'तीन खेमे और एक झोपडी जल गईं'। इन वाक्यों के अन्त में जो 'गये' और 'गईं' हैं, उन्हीं के कारण वाक्य कुछ खटकते हैं। पर यदि हम कहें—एक खेमा और तीन झोपड़ियाँ जल गईं' या 'एक झोपड़ी और तीन खेमे जल गये' तो वाक्यों में की खटक निकल जायगी। तात्पर्य यह कि ऐसे अवसरों पर पहले उसी चीज का नाम होना चाहिए, जो एक हो; और तब उन चीजों का जिक्र होना चाहिए, जो एक से अधिक हो।

अब हम आपको वचन के सम्बन्ध में एक और प्रकार का अन्तर बतलाना चाहते हैं। हम कहते हैं—चार हाथवाले विष्णु की मूर्ति हमारे सामने थी। क्यों? इसी लिए कि विष्णु की उस मूर्ति के चार ।ऽ थे। पर हम बाजार में जाकर 'चार हाथ (या आठ हाथ या दस

हाथ) वाली धोती' ही माँगते हैं, 'चार हाथों (या आठ हाथों या दस हाथों) वाली धोती, नहीं माँगते। क्यों ? इसी लिए कि धोती के चार (या आठ या दस) हाथ नहीं होते, बल्कि 'चार (या आठ या दस) हाथ' धोती की केवल लम्बाई का सूचक है। इस सिद्धान्त के अनुसार यही कहना ठीक है—उसे सौ रुपये जुर्माना हुआ। 'उसे सौ रुपया जुर्माना हुआ' या 'उसे सौ रुपये जुर्माने हुए' कहना ठीक नहीं है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं—'उसकी हत्या छुरे से हुई थी' तब हम इस बात का विचार नहीं करते कि उसके शरीर पर छुरे के दो घाव लगे थे या चार या दस। हम तो यही सूचित करना चाहते हैं कि जिस शस्त्र से उसकी हत्या हुई थी, वह छुरा था, तलवार या कटार नहीं। पर 'झुंडों के झुंड देहाती वहाँ आ पहुँचे' कहना इसलिए ठीक नहीं है कि 'झुंड के झुंड' एक ऐसा मुहावरा है, जिसके रूप में किसी प्रकार का परिवर्तन या विकार नहीं हो सकता। एक दूसरे उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। जब किसी ओर से हमें बहुत-से घोड़े आते हुए दिखाई देंगे, तब हम कहेंगे—उधर से घोड़े पर घोड़े चले आ रहे हैं; क्योंकि मुहावरे के अनुसार ऐसा कहना ही ठीक होगा। यदि हम कहें—'उधर से घोड़ों पर घोड़े चले आ रहे थे' तो इसका अर्थ यह हो जायगा कि बहुत-से घोड़ों पर लदे हुए बहुत-से घोड़े आ रहे थे। ये सब बातें सूचित करती हैं कि वचन ठीक रखने के लिए हमें बहुत सी बातों का विचार करना पड़ता है; और जहाँ हम इस प्रकार का विचार नहीं करते, वहाँ और का और अर्थ हो जाता है।

कुछ अवसरों पर वचन का ठीक ध्यान न रखने के कारण अर्थ में बहुत गड़बड़ी हो जाती है। जैसे, एक प्रसिद्ध मुहावरा है—पैर (या पाँव) न उठना। कभी कभी ऐसा होता है कि थकावट, भय, शोक आदि के कारण हमसे चला या आगे बढ़ा नहीं जाता। उस समय हम कहते हैं—मैं तो बहुत प्रयत्न करता था, पर मेरा पैर ही

नहीं उठता था। कुछ लोग इसकी जगह भूल से कभी-कभी कह जाते हैं—मेरे पैर ही नहीं उठते थे। पर ऐसा कहना उसी अवस्था में ठीक होगा, जब हम रोग आदि से पीड़ित होने के कारण पड़े-पड़े अपने दोनों पैर एक साथ उठाने का प्रयत्न करें, पर उठा न सकें। पर चलने या आगे बढ़ने में हम कभी दोनों पैर एक साथ नहीं उठाते, बल्कि जब पहले एक पैर उठाकर आगे रख लेते है, तब दूसरा पैर उठाते हैं। इसी लिए चलने के सम्बन्ध में 'मेरा पैर ही नहीं उठता था' कहना ही ठीक है। इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—ज्यों ही हमने घर से पैर निकाले, त्यों ही पानी बरसने लगा। वास्तव में होना चाहिए—ज्यो ही हमने घर से पैर निकाला……। 'पैर निकाले' का प्रयोग तो उसी समय ठीक हो सकता है, जब हम कहीं बैठे हों और अपने दोनो पैर उठाकर खिड़की या दरवाजे मे से बाहर की ओर निकालें। इस प्रकार के प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से ठीक न होने के सिवा मुहावरे और प्रयोग की दृष्टि से भी ठीक नहीं होते। मुहावरे तो तभी ठीक होंगे, जब वे व्याकरण की दृष्टि से भी ठीक हों और अपने बँधे हुए शब्दों में भी हों। इसी सिद्धान्त के अनुसार यह कहना भी ठीक नहीं है—हमने उन्हें हाथ जोड़ा ; क्योंकि हाथ जोड़ने की क्रिया एक हाथ से नहीं, बल्कि दोनो हाथो से होती है। इसलिए सदा 'हाथ जोड़े' ही कहना चाहिए। 'कै बजा' कहना ठीक हो सकता है ; पर 'दो बजा', 'चार बजा' या 'दस बजा' कहना ठीक नहीं है। एक से अधिक के लिए सदा 'बजे' ही कहना चाहिए।

वचन के सम्बन्ध में ध्यान रखने की कुछ और बातें भी हैं। हिन्दी में कुछ शब्द ऐसे हैं जो सदा बहुवचन में ही आते हैं, पर जिन्हें लोग प्रायः भूल से एकवचन में लिख जाते हैं। जैसे—दर्शन, प्राण, हस्ताक्षर, आँसू आदि। 'मैं कल आपका दर्शन करूँगा', 'उसका प्राण निकल गया', 'उसने पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किया' और 'उसकी आँखों से

आँसू बह रहा था' सरीखे प्रयोग अशुद्ध होते हैं। इन वाक्यों के शुद्ध रूप होंगे—'मैं कल आपके दर्शन करूँगा', 'उसके प्राण निकल गये', 'उसने पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये' और 'उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे'। इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो एक से अधिक वस्तुओं के सूचक होने पर भी संस्कृत व्याकरण के अनुसार अविकारी है और इसी लिए जिनके रूप में किसी प्रकार का परिवर्तन या विकार नहीं होना चाहिए। प्रायः लोग लिखते हैं—'वहाँ अनेकों आदमी इकट्ठे हो गये' और 'मैंने उन्हे अनेकों बार समझाया'। पर यहाँ 'अनेकों' रूप इसलिए ठीक नहीं कि 'अनेक' एक से अधिक का सूचक तो है ही, अविकारी शब्द भी है। इसलिए होना चाहिए—'वहाँ अनेक आदमी इकट्ठे हो गये' और 'मैंने उन्हें अनेक बार समझाया'। पर हाँ, यदि हम 'अनेक' का प्रयोग विशेषण के रूप में न करके संज्ञा के रूप में करें, तो बात दूसरी है। उस दशा में हम कह सकते हैं—अनेकों का यह मत है। इसी प्रकार 'इस बात में सबों ने उसका साथ दिया' और 'ऋषि-मुनि आदियों का यही मत है' कहना भी ठीक नहीं है। 'सब' का रूप सदा 'सब' और 'आदि' का रूप सदा 'आदि' ही रहता है। उन्हें 'सबों' और 'आदियों' रूप देना ठीक नहीं है। कुछ लोग 'किन' का रूप 'किन्हीं' कर देते हैं। यह भी ठीक नहीं है। 'किन्हीं लोग ने' की जगह 'कुछ लोगों ने' होना चाहिए। 'सामग्री' है तो अनेक प्रकार की और अनेक चीजों के समूह का नाम, फिर भी इसका प्रयोग सदा एक-वचन में होता है। इसी लिए यह कहना ठीक नहीं है—हमने सब सामग्रियाँ इकट्ठी कर ली हैं। इसकी जगह 'सब सामग्री' कहना ही ठीक है। यही बात 'दाम' के सम्बन्ध मे भी है। 'दाम' पुराने-जमाने में एक प्रकार का सिक्का होता था। बाद में कौड़ी को भी दाम कहने लगे थे, जिससे 'छदाम' शब्द बना है। इसी लिए प्रायः लोग कहते हैं—हमने इसके दाम चुका दिये। ऐसे अवसरों पर 'दाम'

का प्रयोग जो बहुवचन मे होता है, वह उसके सिक्केवाले अर्थ के विचार से होता है। पर वास्तव मे ऐसे अवसरों पर उसका प्रयोग 'मूल्य' के अर्थ में होता है; इसलिए 'मैंने इसका दाम चुका दिया' कहना ही ठीक है।

इसी प्रकार के कुछ और शब्द हैं जो होते तो दो वस्तुओं के सूचक हैं, पर जिनका प्रयोग एक-वचन में ही होता है। जैसे—जूता, जोड़, जोड़ा आदि। दोनों पैरों के लिए जूते भी दो अलग-अलग होते हैं और 'जोड़' या 'जोड़ा' में भी कोई दो चीजें होती हैं। पर या तो उनका व्यवहार एक साथ होता है या वे आपस में एक दूसरे से मिली रहती है; और इसी लिए उनके सूचक शब्दों का प्रयोग भी एक-वचन में होता है। हम कहते हैं—'हमारा जूता खो गया' या 'आज हमने एक जोड़ा धोती खरीदी है'। हम यह नहीं कहते—'हमारे जूते खो गये' या 'हमने एक जोड़ा धोतियाँ खरीदी हैं'। पर यदि हम कई आदमी एक साथ अपने-अपने लिए जूते या धोती-जोड़े खरी दें, तो हम कहेंगे—आज हम लोगों ने जूते (या धोती जोड़े) खरीदे है।

एक बात और है। कभी कभी कुछ लोग विदेशी भाषाओ के कुछ शब्दों के बहुवचन रूपो का प्रयोग करते हैं। जैसे–वहाँ पाँच फीट लम्बा साँप निकला था। इस सम्बन्ध मे ध्यान रखने की बात यह है कि 'फुट' शब्द का बहुवचन 'फीट' अँगरेजी में ही होता है। हम अँगरेजी से 'फुट' शब्द लेते या ले सकते है; पर यदि हमें उसका बहुवचन बनाना हो तो हम अपने ही व्याकरण के अनुसार उसका रूप रक्खेंगे, अँगरेजी व्याकरण के अनुसार नहीं। और हमारे व्याकरण मे कोई ऐसा नियम नहीं है, जिससे 'फुट' का बहुवचन 'फीट बनता हो। इसलिए हमें कहना होगा—वहाँ पाँच फुट लम्बा साँप निकला था। इसी प्रकार यह कहना भी ठीक नहीं है—उन्होंने सब कागजात हमें दिखलाये ; क्योंकि हम 'कागज' शब्द ही लेते या ले सकते हैं,

उसका बहुवचन रूप 'कागजात' नहीं। इसलिए हमें कहना चाहिए—उन्होंने सब कागज हमें दिखलाये। इसी प्रकार 'हमने आमेर के महलात देखे' और 'उसने अफसरान से मुलाकात की' की जगह कहना चाहिए—'हमने आमेर के महल देखे' और 'उसने अफसरों से मुलाकात की'। इसके विपरीत 'देहात' और 'औकात' सरीखे कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो वास्तव में हैं तो बहुवचन ही, पर हिन्दी में जिनका प्रयोग सदा एक-वचन में होता है। फारसी में 'देह' का अर्थ है—'गाँव'; और 'देहात' उसी का बहुवचन रूप है। पर हिन्दी में हम कहते हैं—'यह शहर है, देहात नहीं है।' और 'अनाज देहातों में पैदा होता है, शहरों में नहीं।' इसी प्रकार 'औकात' भी वक्त का बहुवचन है। पर हमारे यहाँ न तो वह इस अर्थ में चलता है, न बहुवचन माना जाता है। यों 'वक्त' के बहुवचन 'औकात' का प्रयोग भी पुल्लिग में ही होना चाहिए, क्योंकि 'वक्त' पुंलिंग है; पर हम उसका प्रयोग पुंलिंग में नहीं, बल्कि स्त्रीलिंग में करते हैं। अर्थात् हमने उसका लिंग, वचन और अर्थ सभी बदल दिये है। हम उसका प्रयोग 'सामर्थ्य' और 'आर्थिक योग्यता' या 'वैभव' के अर्थ में करते हैं। जैसे—'तुम्हारी क्या औकात है जो तुम हमारे मुँह लगो' और 'अब तो उनकी औकात लाखों की हो गई है' आदि।

बहुवचन दो प्रकार के होते है। पहला प्रकार तो वही साधारण बहुवचन का है, जो एक से अधिक चीजों का सूचक होता है। दूसरा प्रकार है—आदरार्थक बहुवचन। हम कहते हैं—'पंडित जी आये', 'भइया गये' आदि। वास्तव में 'पंडित जी' या 'भइया' है तो एक ही, फिर भी हम उनके साथ क्रिया के बहुवचनवाले रूप का इसलिए प्रयोग करते हैं कि हम उन्हे बड़ा मानते और उनका आदर करते है। इसी लिए हम ऐसे बहुवचन को आदरार्थक बहुवचन कहते हैं। जहाँ किसी बड़े और आदरणीय का जिक्र हो, वहाँ उसके साथ विशेषण,

क्रिया आदि के रूप भी बहुवचन मे ही होने चाहिएँ। इस दृष्टि से यह कहना ठीक नहीं है—'श्री नारायणदास कहता है' या 'बा० महेशप्रसाद आया'; क्योंकि इन वाक्यों में हम 'श्री' और 'बा०' का प्रयोग करके उन लोगों के प्रति आदर प्रकट करते हैं। यदि इन वाक्यों में 'श्री' या 'बा०' न भी हो, तो भी आदर के विचार से हमें सर्वनाम, विशेषण और क्रियाएँ बहुवचन मे ही रखनी पड़ती है। 'उसकी माता जी उससे बहुत प्रेम करती थी' में 'थी' की जगह 'थीं' होना चाहिए; क्योंकि इसमे का 'जी' सम्मान के लिए आया है; और जहाँ किसी के आदर का भाव होता है, वहाँ बहुवचन का प्रयोग होता है। हाँ यदि ऊपरवाले वाक्य में 'जी' न हो तो 'थी' का प्रयोग ही ठीक होगा।

१३

लिंग

व्याकरण में लिंग वह तत्त्व है, जिससे यह जाना जाता है कि हम जिसके विषय में कोई बात कहते हैं, वह पुरुप-जाति का है या स्त्री-जाति का। यदि हम किसी पुरुष या लड़के के सम्बन्ध में कोई बात कहेंगे, तो एक तरह से कहेंगे; और किसी स्त्री या लड़की के सम्बन्ध में कहेंगे, तो कुछ दूसरी तरह से। जैसे—'राम आता है' और 'कमला जाती है'। यही बात बहुत से पशुओं आदि के सम्बन्ध में भी होती है। जैसे, हम कहते हैं—'घोड़ा दौड़ता है' और 'गाय चरती है'। यह इसी लिए कि 'राम' और 'घोड़ा' पुंल्लिग हैं, 'कमला' और 'गाय' स्त्री-लिग। यह इतनी सीधी और सहज बात है कि इसके सम्बन्ध में विशेप कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। पर कठिनता तब होती है, जब हम यह जानते ही नहीं कि जिसके बारे में हम कुछ कह रहे हैं, वह पुरुष-जाति का है या स्त्री-जाति का। पर जब व्याकरण में लिंग का तत्त्व आ जाता है, तब हमें इस प्रकार की कठिनाइयों से बचने के लिए कुछ मार्ग निकालना ही पड़ता है। कुछ पशुओं, पक्षियो आदि के सम्बन्ध में हम मान लेते हैं कि उनके नामो का प्रयोग हम केवल पुंल्लिग में अथवा केवल स्त्री लिंग मे करेंगे। जैसे कौआ, खटमल, मच्छर, कछुआ आदि शब्दों को हमने पुंल्लिग और चील, मक्खी, चिड़िया, मैना, गिलहरी, तितली आदि को स्त्री-लिंग मान लिया है। इन जीवों मे भी स्त्री और पुरुप के भेद होते तो हैं, पर हम उस भेद के फेर मे नहीं पड़ते; और अपना काम चलाने के लिए उन्हे किसी एक लिंग का मान लेते हैं। यो भले ही हम किसी अवसर पर

'कछुआ' का स्त्री-लिंग 'कछुई' या 'चिड़िया' का पुंलिंग 'चिड़ा' बना लें, पर साधारण नियम वही है, जो हम अभी बतला चुके हैं।

यहाँ तक तो जैसे-तैसे काम चल जाता है। पर इससे आगे एक और ऐसा क्षेत्र आता है, जिसमें पहुँचने पर हमारे सामने बहुत बड़ी कठिनता आती है। वह क्षेत्र है जड़ पदार्थों का; जैसे—नदी, पहाड़, जंगल, झोपड़ी, मकान, महल, मन्दिर, पत्थर, मिट्टी, सोना, कली, फूल, पेड़, पौधे, लताएँ आदि। यदि बात यहीं तक रहे, तो भी किसी प्रकार काम चला लिया जाय। पर हमारी बात-चीत के विषय अनन्त होते हैं; इसलिए उसमें भाववाचक संज्ञाएँ, अनेक प्रकार के मान और परिमाण, नाप-जोख तरह तरह के काम-धन्धे, व्यापार आदि हजारों बाते होती हैं। जब व्याकरण में एक बार लिंग का तत्त्व आ जाता है, तब उसका विचार हमें सभी शब्दो के लिए करना पड़ता है। इसी लिए संस्कृत, अँगरेजी, मराठी आदि भाषाओं में एक तीसरा लिंग और होता है, जिसे नपुंसक लिंग कहते हैं। इस प्रकार उन भाषाओं में यह कठिनता कुछ सहज में दूर हो जाती है, पर वचन और क्रिया के रूपों आदि के झगड़े बढ़ जाते है। पर जिन भाषाओं मे दो ही लिंग होते हैं, उनमे झगड़े तो कुछ कम रहते हैं, पर शब्दों के लिंग-निर्णय की कठिनता बहुत बढ़ जाती है।

एक बात और है। कुछ भाषाएँ ऐसी है, जिनमे लिंग का विचार केवल संज्ञाओ और सर्वनामो के सम्बन्ध मे होता है; जैसे—अँगरेजी। उसमे लिंग के कारण विशेषण या क्रिया आदि के रूप नहीं बदलते। बहुत कुछ यही बात हमारे यहाँ की बँगला भाषा में भी है। पर हमारी हिन्दी मे यह बात नहीं है। हमारे यहाँ बहुत-से विशेषणों और क्रिया-विशेषणों तथा सभी क्रियाओं के रूप भी लिंग के अनुसार बदलते हैं। हमें कहना पड़ता है—'मोटा आदमी' और मोटी औरत'। यहीं तक नहीं, हमें 'मोटी अक्ल' से 'मोटा हिसाब'

भी लगाना पड़ता है; और 'इतनी-सी बात' समझाने के लिए 'इतना प्रयत्न' भी करना पड़ता है। हमारा 'कुरता सिलता है' तो 'कमीज धुलती' है। हमें 'सब विषय समझाने पड़ते हैं' और 'सब बातें बतलानी पड़ती हैं'। इसके सिवा हमारे यहाँ कुछ स्थानिक और प्रान्तिक विलक्षणताएँ भी हैं। जो 'गेंद' और सब जगह पुंलिंग माना जाता है, वही व्रज में स्त्री-लिंग माना जाता है। 'दही', 'मोती' आदि कुछ शब्द पुंलिंग होने पर भी कुछ स्थानों मे स्त्री-लिंग माने और बोले जाते हैं। 'तार' और 'गेहूँ' सरीखे कुछ शब्द हैं तो पुंलिंग ही, पर पंजाब में ये स्त्री-लिंग माने और बोले जाते हैं। संस्कृत का 'धारा' शब्द है तो स्त्री-लिंग, पर केवल इसके आकारान्त होने के कारण पश्चिम में कुछ लोग और विशेषतः उर्दूवाले इसे पुंलिंग रूप में लिखते और बोलते हैं; जैसे—वह नदी के धारे में बह चला। यही नहीं, हम स्वयं कुछ शब्द एक अर्थ में पुंलिंग और दूसरे अर्थ में स्त्री-लिंग बोलते और लिखते हैं, और वास्तव में वे हैं भी वैसे ही। 'लता' के अर्थ में 'बेल' स्त्री० और प्रसिद्ध फल के अर्थ मे पुंलिंग है। 'हम रामायण की टीका पढ़ते हैं' पर 'माथे पर लम्बा टीका लगाते हैं'। हम कहते हैं—'रात के समय चाँद निकलता है' और 'मारे खर्च के चाँद गंजी हो गई'। हम लड़कियों का नाम तो 'तारा' रखते हैं, पर साथ ही कहते हैं—आकाश में तारे छिटके हुए थे। तिसपर जब विदेशी शब्द आकर हमारी भाषा में मिलते हैं, तब उनका लिंग निश्चित करना और भी कठिन होता है। कोई लिखता है—ट्रक (truck) आया, और कोई कहता है—ट्रक चली गई। 'पिक्चर' (सिनेमा का चल-पत्र) किसी के लिए पुंलिंग और किसी के लिए स्त्री-लिंग है। इन्हीं सब कारणों ने मिल-जुलकर हिन्दी में लिंग की एक ऐसी समस्या खड़ी कर दी है, जिसे सुलझाना बहुत कठिन है। हिन्दी भाषा और व्याकरण में जितना पेचीला विषय लिंग का है, उतना पेचीला और कोई विषय नहीं है।

पर मनुष्य की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वह अपने सामने पड़नेवाली कठिनाइयाँ दूर करे। इसलिए जहाँ तक हो सकता है, कठिनाइयाँ दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। अब यह बात दूसरी है कि उसमें हमें पूरी पूरी सफलता न मिले। और लिंग के विषय में हमे यह मानना पड़ता है कि उसके ठीक ठीक और सन्तोषजनक नियम अभी तक नहीं बन सके हैं और न भविष्य में जल्दी बनने की कोई आशा दिखाई देती है। इसलिए अब तक इस विषय मे जो प्रयत्न हुए है, उन्हीं से हमें सन्तोष करना पड़ता है। पर न तो वे प्रयत्न पूरे हैं और न उन प्रयत्नों से बने हुए नियम ही व्यापक है। इसलिए यदि लिग सम्बन्धी हमारा यह विवेचन भी अधूरा रह जाय, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

व्याकरण में मुख्य रूप से शब्दों का ही विचार होता है। उसमें शब्दों के द्वारा सूचित होनेवाले प्राणियों या पदार्थों आदि का भी विचार होता तो है, पर उसका उतना महत्त्व नहीं होता, जितना स्वयं शब्दों का होता हैं। ऊपर हमने 'कौवा' 'मक्खी' आदि के जो उदाहरण दिये है, वे इसी सिद्धान्त के सूचक है। शब्दो के लिंग का निर्णय दो बातों से होता है। एक तो उनके रूप से, और दूसरे उनके अर्थ से। जैसे कपड़ा, पैसा, भीड़, लकड़ी आदि ऐसी चीजें हैं, जिनमे स्त्री और पुरुष का कोई भेद होता ही नहीं। कट्टरपन, समझौता, दिन, रात, सवेरा, सन्ध्या आदि भी इसी प्रकार की चीजे है। ऐसी चीजो के वाचक शब्दों का लिग उनके रूप के अनुसार निश्चित होता है। जिन प्राणियों मे स्त्री और पुरुष का भेद बिलकुल निश्चित या प्रत्यक्ष होता है, उनके सूचक शब्दो का लिंग उनके अर्थ के आधार पर निश्चित होता है। जैसे—लड़का-लड़की, घोड़ा-घोड़ी आदि। एक बात और है। हमारे यहाँ के अधिकतर शब्द संस्कृत से आये हैं; इसलिए उनके लिंग का निर्णय भी बहुत कुछ संस्कृत के आधार पर ही होता है। संस्कृत में

कुछ तत्सम और हिन्दी के कुछ तद्भव शब्द ऐसे भी हैं, जिनका लिंग हिन्दी में बदल गया है। जैसे अग्नि, आत्मा, देह, पवन और सपथ संस्कृत में पुंलिंग हैं, पर हिन्दी में इनका प्रयोग स्त्री-लिंग में होता है। तारा, देवता और व्यक्ति शब्द संस्कृत में स्त्री-लिंग होने पर भी हिन्दी में पुंलिग माने जाते हैं। इस प्रकार का अन्तर कुछ तद्भव शब्दों में भी है। जैसे संस्कृत में 'बिन्दु' और 'तन्तु' शब्द पुंलिंग हैं, पर हिन्दी में उनसे बने हुए 'बूँद' और 'ताँत' शब्द स्त्री-लिग हैं। सं० 'कर्त्तन' शब्द तो हिन्दी में पुंलिंग ही है, पर उससे बना हुआ हिन्दी शब्द 'कतरन' स्त्री० है। हम पहले कह चुके हैं कि संस्कृत के अधिकतर नपुंसक-लिंग शब्द हिन्दी में पुंलिंग होते हैं। परन्तु वस्तु, पुस्तक, आयु आदि संस्कृत के कुछ ऐसे शब्द हिन्दी में नपुंसक-लिंग माने जाते हैं। पर ऐसे शब्द बहुत थोड़े हैं। संस्कृत मे बहुत-से शब्द नपुंसक-लिग हैं, पर हिन्दी में उनमें से अधिकतर पुंल्लिग ही माने जाते हैं। बहुत-से शब्दों का लिंग समानता के आधार पर भी निश्चित होता है, और यह समानता या तो अर्थ की होती है या रूप की। जैसे, हमारे यहाँ 'गेंद' पुंलिंग है तो हम अँगरेजी के 'बॉल' को भी पुंलिंग मान लेते हैं; और 'प्रार्थना' तथा 'सूचना' स्त्री-लिग है, इसलिए 'अपील और 'रिपोर्ट' को भी स्त्री-लिंग मान लेते है। अतः हम इसे लिंग निश्चित करने का कोई नया या अलग प्रकार नहीं कह सकते।

ये सब तो हुईं सिद्धान्त की बातें। अब प्रत्यक्ष प्रयोग की बातें लीजिए। हिन्दी के तद्भव शब्दों के सम्बन्ध में पहली बात यह है कि जिन शब्दों के अन्त मे 'ा' होता है, वे प्रायः पुंलिंग माने जाते हैं; और जिनके अन्त में 'ी' होता है, वे स्त्री-लिंग। जैसे—चीता, मैदा, पैसा, सोना, लोहा, गन्ना, रायता, बाजरा, चना, आटा, चमड़ा, कटोरा आदि पदार्थ और रोना, गाना, आना, जाना, उठना, बैठना आदि

क्रियाएँ या क्रियार्थक संज्ञाएँ पुंलिंग हैं। हिन्दी में दूसरी भाषाओं के जो शब्द आते हैं, उनमें से भी अधिकतर इसी नियम के अनुसार पुंलिंग होते हैं। जैसे—तमाशा, हैजा, पाजामा, सोडा, कोटा, कमरा आदि पुंलिंग हैं। स्त्री-लिंग शब्दों में थाली, गाली, मोरी, होली, सीटी, पीठी, रोटी, मिट्टी, सवारी, कमेटी, चिमनी आदि हैं। यही बात गर्मी, सर्दी, गरीबी, अमीरी, उदासी, तैयारी आदि भाववाचक संज्ञाओं के सम्बन्ध में भी है। इसी सिद्धान्त के अनुसार उर्दूवाले 'चर्चा' को भूल से पुंलिग मानते और पूर्वी संयुक्त प्रान्त तथा विहार-वाले 'बिच्छू' का स्त्री-लिंग रूप 'बिच्छी' बना लेते है।

पर संस्कृत के तत्सम शब्दों में कुछ और बात है। उनमें जिन शब्दों के अन्त में 'ा' होता है, वे प्रायः स्त्री-लिंग होते हैं। जैसे—दया, माया, लज्जा, सभा, कृपा, क्षमा, दशा, भाषा, आशा आदि। संस्कृत की जिन भाव-वाचक अथवा दूसरी संज्ञाओ के अन्त में 'ना' या 'ता' होता है, वे भी स्त्री-लिग होती हैं। जैसे—प्रार्थना, वन्दना, रचना, घटना, याचना, घोषणा, धारणा और उदारता, सुन्दरता, नम्रता, गम्भीरता, सज्जनता आदि। इसी सिद्धान्त के अनुसार संस्कृत का 'देवता' शब्द भी वास्तव में स्त्री-लिग ही है, पर हिन्दी में वह, आकारान्त होने के कारण, पुंलिंग माना जाता है। अरबी-फारसी के शब्दों में कुछ आकारान्त शब्द स्त्री-लिंग हैं और कुछ पुंलिग। जैसे हवा, सजा, दवा, वला आदि स्त्री-लिग हैं और मजा, रोजा, तकाजा आदि पुंलिग। हिन्दी के तद्भव शब्दो में जो डिबिया, पुड़िया, गुड़िया, बछिया आदि स्त्री-लिंग संज्ञाएँ हैं, वे दूसरे शब्दों से बनी हुई हैं। वे वास्तव में आकारान्त हैं भी नहीं, बल्कि उनके अन्त में 'इया' है। ऐसे रूपों को अल्पार्थक स्त्री-लिंग रूप कहते हैं। इसी आधार पर 'खड़िया' सरीखे कुछ स्वतन्त्र शब्द भी स्त्री-लिंग माने जाते हैं। पर 'जड़िया' और 'फड़िया' सरीखे शब्द पुरुषवाचक

ने के कारण पुंलिंग ही होते हैं। 'भड़भड़िया', 'बढ़िया' आदि ब्द विशेषण होने के कारण दोनों लिंगों में इसी रूप में रहते हैं।

इन सब बातों का सारांश यही है कि जिन शब्दों में किसी प्रकार ी कोमलता या अर्थ के विचार से लघुता होती है, वे प्रायः स्त्री-लिंग वर्ग में चले जाते हैं, शेष शब्द प्रायः पुंलिंग वर्ग में रहते हैं। स्कृत और हिन्दी के कुछ प्रत्यय भी ऐसे हैं, जिनके लगने पर शब्द ी-लिंग या पुंल्लिंग हो जाते हैं। हम पहले बतला चुके हैं कि संस्कृत ी जिन भाववाचक संज्ञाओं के अन्त में 'ता' प्रत्यय होता है, वे सब ी-लिंग होती हैं। जैसे—मधुरता, उत्तमता, सरलता आदि। पर ंस्कृत व्याकरण के नियम के अनुसार भाव-वाचक संज्ञाओं के अन्त ं इसका दूसरा रूप 'त्व' भी होता है; और जिन शब्दों के अन्त में ाह 'त्व' प्रत्यय होता है, वे सब पुंलिंग होते हैं। जैसे बन्धुत्व, ्भुत्व आदि। इसी प्रकार हिन्दी के जिन शब्दों के अन्त में 'वट' ा 'आहट' प्रत्यय होता है, वे सब स्त्री लिंग होते है। जैसे—थकावट, मावट, सजावट, मुस्कराहट आदि। और जिन शब्दों के अन्त मे पन' प्रत्यय होता है, वे सब पुंलिंग होते हैं। जैसे—मट्टरपन, ड़प्पन, छुटपन, आदि। ऐसे सभी अवसरों पर शब्दो के रूप के अनुसार, बल्कि यह कहना चाहिए कि उनमें लगे हुए प्रत्यय के अनुसार, उनके लिग का निर्णय होता है।

हम पहले बतला चुके हैं कि हिन्दी के जिन शब्दो के अन्त में 'ा' होता ह, वे प्रायः पुंलिंग होते हैं; और जिनके अन्त में 'ी' होती है, वे प्रायः स्त्री-लिग होते हैं। प्रायः शब्दो के पुंलिग रूपों से स्त्री-लिग और स्त्री-लिग रूपों से पुंलिग भी इसी सिद्धान्त के अनुसार बनते हैं। जैसे—बकरा से बकरी, घोड़ा से घोड़ी, गगरा से गगरी आदि। इसी सिद्धान्त के अनुसार हम आवश्यकता पड़ने पर 'चिट्ठी' से 'चिट्ठा' 'भट्ठी' से 'भट्ठा' और 'पट्टी' से 'पट्टा' सरीखे कुछ शब्द

भी बना लेते हैं। पर कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जिनमें भेद तो केवल 'ा' और 'ी' का होता है; पर जिनमें स्त्री और पुरुषवाला अन्तर नहीं होता और जिनके अर्थ भी एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं, जैसे कोठा और कोठी, अँगूठा और अँगूठी, कोड़ा और कोडी, सट्टा और सट्टी आदि। कोठा और चीज है, कोठी और चीज। अँगूठा और चीज है, अँगूठी और चीज। दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है। यही बात इस प्रकार के और शब्दों के विषय में भी है। इनमें आपस में पुंलिंग और स्त्री-लिंगवाला भेद नहीं है और अर्थ भी बिलकुल अलग प्रकार के हैं। इस प्रकारके कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जिनमें एक अवस्था में तो स्त्री-लिंग और पुंलिंग का भेद होता है और दूसरी अवस्था में नहीं होता। जैसे—कुबड़ा और कुबड़ी। जब तक ये विशेषण हैं, तब तक दोनों एक-दूसरे के स्त्री-लिंग या पुंलिंग हैं। पर जब हम 'कुबड़ी' शब्द का संज्ञा के रूप में और छोटी टेढ़ी-मेढ़ी छड़ी के अर्थ में प्रयोग करते हैं, तब 'कुबड़ा' से उसका वह सम्बन्ध नहीं रह जाता, जो विशेषण होने की दशा में होता है। इसी प्रकार 'बिल्ला' और 'बिल्ली' जब तक विशेष प्रकार से प्रसिद्ध जन्तु के अर्थ में आते हैं, तब तक तो वे एक दूसरे के स्त्री-लिंग और पुंलिंग रूप होते हैं। पर जब हम 'बिल्ला' शब्द का प्रयोग कपड़े के उस टुकड़े के अर्थ में करते हैं, जो लोगों के किसी दल आदि में होने का सूचक चिह्न होता है, तब 'बिल्ली' के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। और जब 'बिल्ली' का प्रयोग एक प्रकार की सिटकिनी के अर्थ में करते हैं, तब 'बिल्ला' के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। सती, सौत, गर्भवती, सधवा और धाय या दाई सरीखे कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जो वस्तुतः स्त्रियों के लिए ही हैं और जिनका पुंलिंग रूप नहीं होता।

हम पहले कह चुके हैं कि रिश्ते-नाते या सम्बन्ध के सूचक शब्दों

में लिंग के नियम कुछ विलक्षण ही हैं। नाना, मामा, चाचा, दादा[1] आदि के स्त्री-लिंग रूप नानी, चाची, दादी, आदि तो ठीक हैं; पर 'पिता' और 'माता' को एक दूसरे का स्त्री-लिंग रूप मानना ठीक नहीं है। वास्तव में न तो 'पिता' का स्त्री-लिंग रूप होता है, न 'माता' का पुलिंग रूप, क्योंकि दोनों शब्द स्वतन्त्र हैं। इसी प्रकार 'भाई' और 'बहन' को भी स्वतन्त्र मानना चाहिए। 'भाई' का स्त्री-लिंग रूप 'भाभी' और 'बहन' का पुलिंग रूप 'बहनोई' मानना भी ठीक नहीं है। ये सब शब्द अलग अलग सम्बन्धों के सूचक है। यदि हम 'साला' का स्त्री-लिंग रूप 'साली' मान लें, तो व्याकरण की दृष्टि से यह ठीक तो हो सकता है; पर 'साली' का पुलिंग 'साढ़ू' या 'साला' का स्त्री-लिंग 'सलहज' मान लेना ठीक न होगा। तात्पर्य यह कि सम्बन्ध या रिश्ता बतलानेवाले कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनका विरोधी रूप नहीं होता और जिनके लिंग का निर्णय उन व्यक्तियों के स्त्री या पुरुष होने पर आश्रित है, जिनके सूचक वे शब्द होते हैं। कुछ जीव-जन्तुओं के वाचक शब्द ऐसे हैं जो पुरुष और स्त्री दोनों जातियों के लिए प्रचलित हैं। जब ऐसे शब्दों में लिंग का भेद सूचित करना होता है, तब उनके पहले 'नर' और 'मादा' या 'पुरुष' और 'स्त्री' शब्द लगाये जाते हैं। जैसे नर मच्छर और मादा मच्छर; या पुरुष मछली और स्त्री मछली। हाँ, 'मछली' का एक पुलिंग रूप 'मच्छ' भी होता है। कुछ शब्द ऐसे हैं जो पुलिंग और स्त्री-लिंग के अलग अलग वाचक होते हैं और जिनके रूप भी अलग अलग होते हैं। जैसे—वर और वधू या साहब और मेम आदि। कुछ ऐसे यौगिक शब्द भी हैं

१—'दादा' शब्द के सम्बन्ध में एक विलक्षण बात और है। जब इसका प्रयोग 'प्रपिता' या 'पिता के पिता' के अर्थ में होता है, तब तो इसका स्त्री० रूप 'दादी' होता है। पर जब इसका प्रयोग 'बड़े भाई' के लिए होता है, तब इसका स्त्री० रूप 'दीदी' हो जाता है, 'दादी' नहीं रहता।

हम नहीं जानते कि वह पुरुष जाति का है या स्त्री- जाति की; क्योंकि 'वह' का प्रयोग पुरुष और स्त्री दोनों के लिए होता है। यदि 'वह' पुरुष हो तो हम कहते हैं—'वह' पुरुष जाति का है; और यदि 'वह' स्त्री हो तो हम कहते हैं–वह स्त्री जाति की है। पर जहाँ हम जानते ही नहीं कि 'वह' पुरुष है या स्त्री, वहाँ हम इसी पुंलिंगवाली प्रवृत्ति के कारण कहेंगे—हम नहीं जानते कि वह पुरुष जाति का है अथवा स्त्री जाति का। ऐसे अवसरों पर 'स्त्री जाति की' कहना ठीक नहीं है। इसी प्रकार का एक और वाक्य लीजिए–हम जिसकी कल्पना करें, वह भी इसी में आ जाता है। यहाँ 'जिस' किसी 'विचार' या 'पदार्थ' का भी बोधक हो सकता है, और किसी 'बात' या 'वस्तु' का भी। अर्थात् उसके अन्तर्गत पुंलिंग शब्द भी हो सकते हैं और स्त्री-लिंग शब्द भी। पर हम यही कहते हैं—हम जिसकी कल्पना करें, वह भी इसी में आ जाता है। यह नहीं कहते···आ जाता और आ जाती है।

अब इसी दृष्टि से इस वाक्य का विचार कीजिए—सरकार कहती है कि मैं सत्य पर परदा डालना नहीं चाहती। यह वाक्य दो कारणों से ठीक नहीं है। पहला कारण वचन का है। इसमें का 'सरकार' शब्द किसी एक व्यक्ति का वाचक नहीं है। जिसे 'सरकार' कहते हैं, उसमें कई आदमी होते हैं और सब मिलकर काम करते हैं। इसलिए 'मैं' की जगह 'हम' होना चाहिए। अब यदि इस दृष्टि से हम वाक्य बनावें तो उसका रूप हो जायगा—सरकार कहती है कि हम सत्य पर परदा डालना नहीं चाहती। पर यह वाक्य भी इसलिए ठीक नहीं है कि 'सरकार' किसी व्यक्ति का नाम नहीं है, बल्कि एक संस्था का नाम है। ऐसे अवसरों पर भी वही ऊपर बतलाई हुई पुंलिंगवाली प्रवृत्ति काम करती है। और इस दृष्टि से अब हम कहते हैं—'सरकार कहती है कि हम सत्य पर परदा नहीं डालना चाहते' तो वाक्य बिलकुल ठीक हो जाता है।

कुछ इसी प्रकार का एक और अवसर होता है, जब स्त्री-लिंग संज्ञाओं के साथ भी क्रिया का पुलिंग रूप ही आता है। साधारणतः हम कहते हैं—'सबके साथ मित्रता रखनी चाहिए', 'हमें उनकी ढिठाई रोकनी पड़ेगी' और 'इंग्लैंड को रूस के साथ सन्धि करनी पड़ेगी'। पर साथ ही हमें कहना पड़ता है—'सबके साथ मित्रता रखना भले आदमियों की पहचान है', 'उनकी ढिठाई रोकना हमारे बस की बात नहीं है' और इसका अर्थ है—'इंग्लैंड का रूस के साथ सन्धि करना'। पहले प्रकार के वाक्यों में 'रखनी', 'रोकनी' और 'करनी' तथा दूसरे प्रकार के वाक्यो में 'रखना', 'रोकना' और 'करना' आये हैं। इसका कारण यह है कि पहले प्रकार के वाक्यों में तो ये सब शब्द अपने साधारण क्रियावाले रूप में आये हैं, पर दूसरे प्रकार के वाक्यों में (जैसा कि हम पहले 'क्रियाएँ' शीर्षक प्रकरण में बतला चुके है) ये सब शब्द क्रियार्थक संज्ञाओं के रूप में आये हैं, और जैसा कि हम अभी ऊपर बतला चुके हैं, ऐसे अवसरों पर भी वही पुंलिंग-वाली प्रवृत्ति काम करती है। इसी सिद्धान्त के अनुसार 'हमे ऐसी कार्रवाई करनी पड़ेगी' (जैसा कि उर्दूवाले लिखते हैं) कहना ठीक नहीं है।

जहाँ तक हो सकता है, हम स्वयं व्याकरण के पेचीले झगड़ों से बचना चाहते हैं और विद्यार्थियों को भी बचाना चाहते हैं; क्योंकि हम जानते हैं कि व्याकरण सम्बन्धी बहुत सी बातें जानने से शुद्ध प्रयोग के सम्बन्ध की थोड़ी-सी बातें जानना कहीं अच्छा है। फिर भी हिन्दी में लिंग का विषय बहुत ही जटिल है; इसलिए यहाँ व्याकरण के सम्बन्ध में इतनी बातें बतलायी गई हैं। पर हमारा मुख्य उद्देश्य भाषा का प्रयोग या व्यवहार बतलाना ही है; इसीलिए अब हम व्याकरण की जटिलताएँ छोड़कर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं।

लिंग के सम्बन्ध में हमें सदा बहुत ही सचेत रहना चाहिए।

कारण यह है कि भाषा में लिंग सम्बन्धी भूलें सबसे बुरी समझी जाती हैं। किसी को इस प्रकार की भूलें करते देखकर लोग प्रायः कह बैठते हैं—उँह! उन्हें तो स्त्री-लिंग और पुल्लिंग तक का ज्ञान नहीं है। अर्थात् हिन्दी में लिंग सम्बन्धी भूलें ही भद्दी मानी जाती हैं। इसलिए हमें हर शब्द के सम्बन्ध में निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि वह स्त्री-लिंग है या पुंलिंग। कभी कभी हमें कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं, जिनका प्रयोग कुछ लोग एक लिंग मे करते हैं और कुछ लोग दूसरे लिंग में। ऐसे शब्दो को कोशों और व्याकरणों में प्रायः उभय-लिंगी कहते हैं। पर यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो ऐसे शब्द बहुत ही थोड़े होगे। प्रायः होता यही है कि कुछ शब्दों के लिंगो के सम्बन्ध मे लोग भूल करते हैं; और उनके सम्बन्ध में कोश तथा याकरण बनानेवाले कुछ निश्चय न कर सकने के कारण ही उन्हें 'उभय-लिंगी' कह देते है। इसलिए प्रत्येक शब्द का ठीक लिंग जानना बहुत आवश्यक है। उसकी 'लालच बढ़ती जा रही थी', 'जाड़े की मौसिम में', गाड़ी की पहिया टूट गई' और 'तुम्हारी झूठ से तो मैं घबरा गया' सरीखे प्रयोग इसी लिए अशुद्ध और भद्दे हैं कि इनमें 'लालच', 'मौसिम', 'पहिया' और 'झूठ' शब्दों का प्रयोग पुंलिंग की जगह स्त्री-लिंग में हुआ है। जब किसी संज्ञा के पहिले दो या तीन विशेषण होते हैं, तब भी लोग किसी एक विशेषण के लिंग के सम्बन्ध में भूल कर जाते हैं। 'सस्ता और बढ़िया कुरता' कहना तो ठीक है, पर 'सस्ता और बढ़िया धोती' कहना ठीक नहीं है। इसमें 'धोती' के विचार से 'सस्ता' की जगह 'सस्ती' होना चाहिये।

हम पहले बतला चुके हैं कि लिंग के कारण कुछ विशेषणों और क्रिया-विशेषणों में ही नहीं, बल्कि क्रियाओं तक में विकार होता है। इसका आशय यही है कि किसी शब्द के लिंग का प्रभाव सारे वाक्य की बनावट पर पड़ता है। इसी लिए 'उनकी सन्तान युरोप में

जाकर बस गये' और 'उन्होंने ऐसी बात कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था' सरीखे वाक्य अशुद्ध होते हैं। इनमें 'बस गये' की जगह 'बस गई' और 'सोचा था' की जगह 'सोची थी' होना चाहिए। 'उन्होंने आँखें फेरना ही शुरू नहीं की, बल्कि उनके मार्ग में बाधाएँ खड़ा करना भी आरम्भ किया।' भी इसी प्रकार का वाक्य है, जो उर्दूवालों की एक शाखा की दृष्टि से शुद्ध होने पर भी, हिन्दीवालों की दृष्टि में अशुद्ध है। इसमें 'शुरू नहीं की' की जगह 'शुरू नहीं किया' और 'खड़ा करना' की जगह 'खड़ी करना' होना चाहिए। आप पूछ सकते हैं कि जब 'आँखें फेरना' शुद्ध है, तब 'बाधाएँ खड़ा करना' क्यों अशुद्ध है? इसका उत्तर यह है कि 'आँखें फेरना' एक पद है, जिसका अर्थ है—आँखें फेरने का काम। जैसा कि हम पहले क्रिया के प्रकरण में बतला चुके हैं, यह 'फेरना' क्रिया होने पर भी क्रियार्थक संज्ञा के रूप में आया है। पर 'बाधाएँ खड़ी करना' इसलिए शुद्ध है कि 'खड़ा' विशेषण है; और इसलिए यहाँ उसका स्त्री-लिंग रूप 'खड़ी' होना चाहिए।

इसी प्रकार 'इस काम में देर लगना स्वाभाविक थी' और 'उन्होंने उनसे भेंट करना चाही' सरीखे प्रयोग भी अशुद्ध हैं। इनमें से पहले वाक्य में 'थी' की जगह 'था' और दूसरे वाक्य में 'चाही' की जगह 'चाहा' होना चाहिए। 'अच्छे साहित्य का प्राण तो सरसता ही हो सकता है' में 'हो सकता है' की जगह 'हो सकती है' तो होना ही चाहिए; इसमें एक और भूल यह है कि 'प्राण' का प्रयोग एकवचन में हुआ है। (जैसा कि हम पहले 'वचन' के प्रकरण में कह चुके हैं, 'प्राण' का प्रयोग सदा बहुवचन में होना चाहिए।) और इसी लिए वाक्य का शुद्ध रूप होगा—अच्छे साहित्य के प्राण तो सरसता ही हो सकती है; क्योंकि होनेवाली चीज 'सरसता' है, न कि 'प्राण'। इसी प्रकार 'यह भारत सरकार स्वतन्त्र राज्य नहीं था' भी इसलिए अशुद्ध है कि इसमे कर्त्ता 'भारत सरकार' है, 'स्वतन्त्र राज्य' नहीं। इसलिए वाक्य का शुद्ध रूप होगा—यह भारत सरकार स्वतन्त्र राज्य

नहीं थी। यद्यपि 'राज्य' के तुरन्त बाद 'थी' का प्रयोग खटकता है, पर है वही शुद्ध। हाँ, यदि हम इस वाक्य की खटक मिटाना चाहें तो कह सकते हैं—यह भारत सरकार स्वतन्त्र राज्य के रूप में नहीं थी। और वाक्य का वास्तविक रूप है भी यही।

यह तो सभी लोग जानते हैं कि हिन्दी में 'का' विभक्ति का स्त्री० रूप 'की' होता है। पर कभी कभी ऐसा होता है कि 'का' या 'के' और 'की' के अन्तर के कारण ही वाक्य के अर्थ में भी बहुत अन्तर हो जाता है। जैसे—'एक प्रकार की मोतियों की माला' और 'एक प्रकार के मोतियो की माला'। पहला वाक्य 'माला' के प्रकार का सूचक है; और वह बतलाता है कि मोंतियों की मालाएँ अनेक प्रकार की होती हैं; और हम उनमें से एक प्रकार की 'माला' का जिक्र कर रहे है। पर दूसरे वाक्य से प्रकट होता है कि 'मोती' कई प्रकार के होते हैं, और उनमें से एक प्रकार के 'मोतियों' की माला का हम जिक्र कर रहे है।

हम पहले बतला चुके हैं कि कुछ अवसरों पर वचन का ठीक ध्यान न रखने के कारण मुहावरे तक अशुद्ध हो जाते हैं। यही बात लिंग के सम्बन्ध में भी है। यदि किसी मुहावरे मे हम लिग सम्बन्धी कोई सामान्य-सी भी भूल कर जायँ, तो या तो उसका अर्थ ही बदल जायगा या वह मुहावरा ही अशुद्ध हो जायगा। जैसे, असल मुहावरा है—नाक मे दम होना। पर इसका प्रयोग सदा इसी रूप में होता है—'हमारा नाक मे दम है (या हो गया है)', अथवा 'उसका नाक में दम है (या हो गया है)।' कारण यह है कि 'हमारा' का सम्बन्ध 'दम' से है, 'नाक' से नहीं। पर यदि इसके बदले में हम कहें—'हमारी नाक में दम हो गया' या 'उसकी नाक में दम है' तो लोग प्रसंग से भले ही इसका अर्थ समझ लें, पर वास्तविक दृष्टि से इसका कुछ भी अर्थ न होगा और इसी लिए मुहावरे की दृष्टि से इस प्रकार के प्रयोग अशुद्ध होंगे।

१४

विभक्तियाँ

हम कहते हैं—'राम ने कृष्ण की पुस्तक चोरी से गोपाल को दे दी। बात खुलने पर तीनों आपस में लड़ गये।' इन वाक्यों में जो 'ने', 'की', 'से', 'को', 'पर' और 'में' हैं, वही विभक्तियाँ हैं। भाषा में इनका काम है—एक शब्द का दूसरे के साथ सम्बन्ध सूचित करना। यदि ऊपर के वाक्यों में से ये विभक्तियाँ निकाल दी जायँ तो बाकी शब्दों का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध न जाना जा सकेगा। अर्थात् यदि वाक्यों में विभक्तियाँ न हों, तो उनका कुछ अर्थ ही न रह जाय। विभक्तियाँ निकाल देने पर उक्त वाक्य का रूप रह जायगा—राम कृष्ण पुस्तक चोरी गोपाल दे दी। पहले तो इसका कोई अर्थ ही नहीं होगा; पर यदि कुछ खींच-तानकर हम इसका अर्थ लगाना भी चाहें तो इसके कई अर्थ हो सकेंगे। इसका यह अर्थ हो सकेगा कि राम को कृष्ण की पुस्तक चोरी करके गोपाल ने दे दी; या इसके सिवा इसी तरह का कुछ और अर्थ भी हो सकता है। वाक्य के शब्दों का पारस्परिक सम्बन्ध बतलाने और अर्थ स्पष्ट करने के लिए विभक्तियों की आवश्यकता होती है। प्रायः विभक्तियों के बिना वाक्य भद्दे और अशुद्ध होते हैं। जैसे, 'कुछ समझ नहीं आता' और 'आप दोपहर किसी समय आवें' सरीखे वाक्य भद्दे भी होते हैं और अशुद्ध भी। ये वाक्य तभी अच्छे और शुद्ध होंगे, जब हम कहेंगे—'कुछ समझ में नहीं आता' और 'आप दोपहर को किसी समय आवें'। विभक्तियों का अशुद्ध प्रयोग करने से भी यही बात होती है। यदि हम कहें—

'हम आपको घर से पुस्तक पढ़ते हैं' तो आप कुछ भी मतलब न समझ सकेंगे। हमारी बात का मतलब तो तभी समझ में आवेगा, जब हम कहेंगे—हम आपके घर में पुस्तक पढ़ते हैं। फिर एक बात और है। यदि हम कहें—'पुस्तक आपकी का मूल्य मैं दे चुका हूँ' तो भी वाक्य भद्दा और अशुद्ध होगा, क्योंकि इस वाक्य में 'पुस्तक' का सम्बन्ध बतलानेवाली 'का' विभक्ति 'आपकी' के बाद आई है। वाक्य का सुन्दर और शुद्ध रूप होगा—आपकी पुस्तक का मूल्य मैं दे चुका हूँ। इन सब बातों का अभिप्राय यही है कि वाक्यों में विभक्तियाँ होनी चाहिएँ और ठीक स्थानों पर होनी चाहिएँ।

ये तो हैं विभक्तियों के स्वतन्त्र रूप; पर इनके सिवा इनका एक दूसरा रूप भी है। वह रूप है कुछ सर्वनामों के साथ मिला हुआ। जैसे—'हमारा' वास्तव में 'हमका' का वाचक है, 'तुम्हारा' 'तुमका' का, 'तुम्हें' 'तुमको' का और 'उसे' 'उसको' का। हमारा, तुम्हारा, तुम्हे, उसे आदि में पहले ही प्रत्यय के रूप में विभक्तियाँ लगी हैं। पर संज्ञाओं, विशेषणों और क्रियाओं में जो विभक्तियाँ लगती हैं, वे स्वतन्त्र रूपवाली होती हैं।

विभक्तियों को कुछ लोग प्रत्यय मानते हैं और कुछ लोग अव्यय कहते हैं। पर ये सब ऐसी पेचीली बातें हैं, जिनसे आरम्भिक विद्यार्थियों का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके लिए इतना ही जान लेना बहुत है कि अधिकतर लोग इन्हें प्रत्यय मानते हैं; और प्रत्ययों में भी विभक्तियाँ 'चरम प्रत्यय' कहलाती हैं। अर्थात् किसी शब्द में विभक्ति लग जाने के बाद फिर उसमें और प्रत्यय आदि नहीं लगते। इसी लिए 'गुरु जी तक का विचार है' कहना ही ठीक है; 'गुरु जी का तक यह विचार है' कहना ठीक नहीं है। 'उसके वाली पुस्तक' या 'हमारावाला मकान' कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि 'उसकेवाली'

में तो 'के' स्वतन्त्र रूप में लगा है; इसलिए उसके बाद 'वाली' नहीं होना चाहिए; और 'हमारा' में पहले से प्रत्यय के रूप में विभक्ति लगी है, इसलिए उसके बाद 'वाली'[1] नहीं होना चहिए। और इसी लिए 'उसके ही कारण' कहने से 'उसी के कारण' कहना अधिक अच्छा भी है और अधिक शुद्ध भी।

फिर भी कुछ अवस्थाएँ ऐसी हैं, जिनमें विभक्ति के बाद भले ही कोई और प्रत्यय न लगे, पर कोई स्वतन्त्र विभक्ति लग ही जाती है। जैसे, हम कहते हैं—'इनमें से दो पुस्तकें ले लो', 'चौकी पर की पुस्तकें हटा लो' और 'उनमें का एक कपड़ा खो गया'। इन वाक्यों में 'में', 'पर' और 'में' के बाद भी 'से', 'की' और 'का' विभक्तियाँ आई हैं। पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि ये विभक्तियाँ ही हैं, 'हमारा' या 'उसे' में लगे हुए या 'वाला' आदि प्रत्ययों के समान प्रत्यय नहीं हैं। फिर भी कहा जाता है—'न हो तो हमारे में से ही ले लो।' पर यहाँ 'हमारे' वस्तुतः संज्ञा के समान आया है; और इसी लिए ऊपर के उदाहरणों की भाँति यह प्रयोग भी ठीक है।

विभक्तियों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की कुछ बातें और हैं। पहली बात तो यह है कि इनमें से 'का' को छोड़कर और किसी विभक्ति का रूप नहीं बदलता। 'में', 'ने', 'से', 'को', और 'पर' सदा अपने इन्हीं रूपों में रहते है। केवल 'का' का स्त्री-लिंग रूप 'की' और बहुवचन रूप 'के' हो जाता है। इनमें से 'पर' के सम्बन्ध में एक विलक्षण बात यह भी है कि इसका विरोधी भाव सूचित करने-वाला 'तले' शब्द विभक्ति नहीं है। यदि हम कहें—'चिड़िया पेड़

---

१ 'वाला' या 'वाली' के सम्बन्ध में ध्यान रखने की एक बात यह भी है कि इसे विशेषणों के साथ भी नहीं लगाना चहिए। जिस प्रकार 'हमारावाला' अशुद्ध है, उसी प्रकार 'बड़ावाला, 'छोटावाला', 'अच्छावाल' सरीखे प्रयोग भी अशुद्ध हैं।

पर बैठी है' तो इसमें का 'पर' तो विभक्ति है। पर यदि हम कहें— 'चिड़िया पेड़ तले बैठी है' तो इसमें का 'तले' विभक्ति नहीं है। ('पर' भी केवल 'ऊपर' के अर्थ में विभक्ति है, 'पंख' के अर्थ में वह संज्ञा और 'परन्तु' या 'लेकिन' के अर्थ में अव्यय है।) दूसरी बात यह है कि विभक्तियाँ कारक-चिह्न कहलाती हैं। व्याकरण में कारक का प्रकरण आप पढ़ ही चुके होंगे। ये सब विभक्तियाँ अलग-अलग कारकों के चिह्न हैं; और इनमें से कुछ विभक्तियाँ एक ही नहीं, बल्कि दो दो कारकों के चिह्न हैं; जैसे 'को' कर्मकारक का भी चिह्न है और सम्प्रदान कारक का भी। इसी प्रकार 'से' करण कारक का भी चिह्न है और अपादान कारक का भी। कारकों में एक सम्बोधन कारक भी है; और उसके चिन्ह 'हे', 'हो', 'अरे', 'अजी' आदि हैं। पर इनकी गिनती विभक्तियों मे नहीं होती, अव्ययों में होती है। और कुछ लोग तो सम्बोधन कारक को अलग कारक भी नहीं मानते; उसे कर्त्ता कारक के ही अन्तर्गत रखते है।

अलग अलग विभक्तियाँ अलग अलग अवसरों के लिए होती हैं, और उनसे अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। किसी 'से' प्रेम किया जाता है और किसी 'पर' प्रेम प्रकट किया जाता है। दवा की सूई या इंजेक्शन शरीर 'में' लगाया जाता है और मरहम शरीर 'पर' लगाया जाता है। हम कहते हैं—'इस पुस्तक के चौथे पृष्ठ में बहुत सी भूलें हैं और 'इस पत्र के दूसरे पृष्ठ पर यह लिखा है'। हम 'व्यापार से धन कमाते हैं' और 'हमें व्यापार में लाभ होता है'। हम कहते हैं—'इस बोरे में दो मन गेहूँ है' और 'गेहूँ का यह बोरा दो मन का है'। हम यह तो कहते हैं—उनके पास पुस्तक भेजी गई थी; पर यह नहीं कहते—उनके पास पत्र लिखा गया था। इसके बदले हम कहते हैं—उन्हे (या उनको) पत्र लिखा गया था। जब हमें किसी घटना के बाद का हाल जानना या कहना होता है, तब हम कहते हैं—

इसके आगे (या बाद) का हाल बतलाओ (या सुनो)। और जब हमें किसी के सम्बन्ध की सीमा बतलानी होती है, तब हम कहते हैं—इससे आगे मत बढ़ना। जब हमें साधारणतः बीते हुए दिनों की कोई बात कहनी होती है, तब हम कहते हैं—उन दिनों हम लोग एक ही मकान में रहा करते थे। पर जब हमें उन दिनों की सीमा बाँधनी होती है, तब हम कहते है—उन दिनो में तो यह बात नहीं हुई; बाद में हुई हो तो हम नहीं जानते। इसी प्रकार 'वह देखने पर ठीक जान पड़ा' और 'वह देखने में ठीक जान पड़ा' में भी बहुत अन्तर है। इनमें से पहले वाक्य का आशय यह होगा कि जब हमने उसे देखा, तब वह ठीक जान पड़ा। पर दूसरे वाक्य का आशय यह है कि ऊपर से देखने पर वह ठीक जान पड़ा, चाहे उसके अन्दर कुछ ऐसे दोष रहे हों, जो ऊपर से देखने पर न दिखाई दिये हों। 'वह उन लोगों से मिल गया है' और 'वह उन लोगों में मिल गया है' में भी बहुत अन्तर है। इनमें से पहले वाक्य का अर्थ यह है कि वह आकर उन लोगों से भेंट कर गया है; और दूसरे वाक्य का अर्थ यह है कि वह उन लोगों के दल या पक्ष में हो गया है। इसी प्रकार के अन्तर 'किसी के नाम का', 'किसी के नाम पर' और 'किसी के नाम से' में भी हैं। हम अपने लाभ के लिए किसी के नाम 'का' उपयोग करते हैं और अपने नाम 'की' अँगूठी (या मोहर) बनवाते या खुदवाते हैं। हम किसी के नाम 'पर' कोई मन्दिर या मकान बनवाते हैं; और किसी के नाम 'से' किसी दुकान से कोई चीज जाकर या उधार लाते हैं। वाक्य में विभक्ति होने और न होने से भी कुछ ऐसे ही अन्तर होते हैं। 'शत्रुओं ने नगर पर चार टन गोले बरसाये' का अर्थ यह है कि नगर पर जितने गोले बरसे थे, वे सब तौल में चार टन थे। और 'शत्रुओं ने नगर पर चार टन के गोले बरसाये' का अर्थ यह है कि नगर पर जो गोले बरसे थे, उनमें से हर एक तौल

इसी दृष्टि से हम कभी यह नहीं कहते—हम 'सवेरा से यहाँ बैठे हैं'; सदा 'सवेरे से' कहते हैं। पर हम 'सन्ध्ये से' इसलिए नहीं कहते कि 'संध्या' स्त्री-लिंग है। और इसी लिए 'सन्ध्या से' ही कहना ठीक है। इसी प्रकार 'दरभंगा में हड़ताल', 'लाल किला में उपद्रव' और 'मैं पटना गया था' इसलिए अशुद्ध है कि 'दरभंगा', 'किला' और 'पटना' पुंलिंग हैं; और 'मैं गये से आया हूँ' अथवा 'चिड़िये का अंडा' इसलिए अशुद्ध है कि 'गया' 'और 'चिड़िया' स्त्री-लिंग है। इस सिद्धान्त का ध्यान उन यौगिक शब्दों के प्रयोग में भी रखना पड़ता है, जिनके पहले शब्द आकारान्त और पुंलिंग होते है। जैसे—छापाखाना, अच्छापन, गुण्डाशाही आदि। यह कहना ठीक नहीं है—'यह पुस्तक उसी छापाखाने में छपी है' या 'इसके अच्छापन का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा' या 'वह उनकी गुण्डाशाही का प्रमाण था'। इन वाक्यों में 'छापाखाना', 'अच्छापन' और 'गुण्डाशाही' की जगह क्रम से 'छापेखाने' 'अच्छेपन', और 'गुण्डेशाही' होना चाहिए।

इसी प्रकार के कुछ और अवसर हैं, जिनमें विभक्तियों से पहले आनेवाली संज्ञाओं आदि के रूप कुछ बदल जाते हैं। 'वहाँ पाँच स्त्रियाँ और एक बालक की मृत्यु हो गई' कहना ठीक नहीं है। होना चाहिए—वहाँ पाँच स्त्रियों और एक बालक की मृत्यु हो गई। इसी प्रकार—'उन्हें चार घोड़े और एक बैल का दाम मिला' की जगह 'उन्हें चार घोड़ों और एक बैल का दाम मिला' होना चाहिए। नहीं तो वाक्य का अर्थ हो जायगा—उन्हें चार घोड़े मिले और एक बैल का दाम मिला।

वाक्यों की बनावट पर और भी कई तरह से विभक्तियों का प्रभाव पड़ता है। कभी कभी तो लोग ऐसे अवसरों पर विभक्तियों का प्रयोग कर जाते हैं, जहाँ उनकी कोई आवश्यकता नहीं होती। और कभी

कभी ऐसे अवसरों पर भी विभक्तियों का प्रयोग नहीं करते, जहाँ उनकी आवश्यकता होती है। और इन कारणों से वाक्य प्रायः अशुद्ध और भद्दे हो जाते हैं। पहले हम कुछ ऐसे प्रयोग बतलाते हैं, जिनमें लोग व्यर्थ विभक्तियाँ लगाते हैं।

हम पहले बतला चुके हैं कि कुछ अवस्थाओं में विभक्तियों का वास्तव में तो प्रयोग होना चाहिए, पर व्यवहार में प्रायः उन अवसरों पर विभक्तियों का प्रयोग नहीं होता। अर्थात् कुछ अवसरों के लिए विभक्तियों का लोप हो गया है। उन्हीं से मिलते-जुलते कुछ और अवसर हैं, जिनमें विभक्तियों के प्रयोग से वाक्य में भद्दापन आ जाता है। ऐसे अवसरों पर यदि वाक्य का रूप जरा-सा बदल दिया जाय, तो व्यर्थ की विभक्ति निकल सकती है और वाक्य का भद्दापन दूर हो सकता है। 'हमको बहुत-सी बातों को सीखना पड़ता है' कहने से 'हमें बहुत सी बातें सीखनी पड़ती हैं' कहना अधिक हलका और सुन्दर है। इनमें से पहले वाक्य में तो दो 'को' आये हैं; और दूसरे वाक्य में एक भी नहीं आने पाया है। इसी प्रकार 'इस कार्य को करते हुए हमें बहुत दिन हो गये' की जगह कहना चाहिए—'यह कार्य करते हुए हमें बहुत दिन हो गये'; और 'इसके कहने की आवश्यकता नहीं' की जगह कहना चाहिए—यह कहने की आवश्यकता नहीं।

कुछ लोग एक ही वाक्य में किसी विभक्ति का कई कई वार प्रयोग कर जाते हैं, जिससे वाक्य भद्दा हो जाता है। जैसे—'मातृ भूमि को स्वतंत्र करने को चलो' में दूसरा 'को' बिलकुल व्यर्थ आया है। इसी प्रकार—'उनको उस पुस्तक को भेजने को लिखा गया था' और 'मुझको इस बात को बतलाने को कहा गया था' में तीन तीन वार 'को' आया है। ऐसे अवसरों पर, जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं, यदि हम 'हमको', 'इसको' और 'उनको' की

जगह 'हमें', 'इसे' और 'उन्हें' रक्खें तो एक 'को' अनायास निकल जाता है। दूसरी बात यह है कि 'उस पुस्तक को भेजने को लिखा गया था' और 'इस बात को बतलाने को कहा गया था' की जगह यदि हम कहें—'वह पुस्तक भेजने को लिखा गया था' और 'यह बात बतलाने को कहा गया था' तो वाक्यों में से एक और व्यर्थ का 'को' निकल जाता है। अर्थात् हम कह सकते हैं—'उन्हें वह पुस्तक भेजने को लिखा गया था' और 'मुझे यह बात बतलाने को कहा गया था'। इस प्रकार वाक्यो में से दो दो 'को' निकल जाते हैं और वे हलके तथा सुन्दर हो जाते हैं। 'उन लोगों को सेना हटाने को कहा गया' कितना भद्दा जान पड़ता है! और 'उन लोगों से सेना हटाने के लिए कहा गया' कितना सुन्दर है! 'इसके लिए आन्दोलन का होना आवश्यक है' में 'का' बिलकुल व्यर्थ है।

अब ऐसे प्रयोग लीजिए, जिनमें आवश्यकता होने पर भी लोग कभी कभी विभक्तियों का प्रयोग नहीं करते। ऐसी भूलें प्रायः दो कारणों से होती हैं। एक तो कुछ स्थानिक बोलियों के प्रभाव के कारण; और दूसरे, कुछ विशेष प्रकार के वाक्यों की बनावट के कारण। 'आप अवश्य सुने होंगे' और 'वे हमसे कहे थे' सरीखे प्रयोग बिलकुल स्थानिक हैं और अशुद्ध समझे जाते हैं। होना चाहिए—'आपने अवश्य सुना होगा' और 'उन्होंने हमसे कहा था'। वाक्यों की बनावट के कारण विभक्ति सम्बन्धी जो और भूलें होती हैं, उनके उदाहरण हैं—'वह खिल खिलाकर हँस पड़ा और कहा' या 'वह दौड़ी हुई डाक्टर के पास गई और दवा माँगी'। होना चाहिए—'वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और उसने कहा' और 'वह दौड़ी हुई डाक्टर के पास गई और उसने दवा माँगी'। यह ठीक है कि इस प्रकार की भूलों को हम विभक्ति की भूलें नहीं कह सकते; पर साथ ही हम इन्हें कोरी सर्वनामों की भूलें भी नहीं कह सकते। वास्तव में ये सर्वनामों

के विभक्ति-युक्त रूपों से सम्बन्ध रखनेवाली भूलें हैं; और इसी लिए यहाँ इनका उल्लेख किया गया है।

प्रायः लोग जल्दी में लिख या बोल जाते है—'माता ने हँस दिया' या 'उसने वहाँ से चल दिया' आदि। इस प्रकार की भूलें उन्हीं लोगों से होती हैं, जो यह नहीं जानते कि 'ने' का प्रयोग कहाँ होना चाहिए और कहाँ नहीं। 'ने' का प्रयोग सदा भूत काल में और केवल सकर्मक क्रियाओं के साथ होता है। वर्त्तमान या भविष्य काल में अथवा अकर्मक क्रियाओं के साथ नहीं होता। ऊपर के उदाहरणों में काल तो भूत अवश्य है, पर क्रियाएँ सकर्मक नहीं बल्कि अकर्मक हैं, और इसी लिए उक्त वाक्य अशुद्ध हैं। होना चाहिए–'माता हँस पड़ी' और 'वह वहाँ से चल दिया'। यहाँ हम यह भी बतला देना चाहते हैं, कि 'देना' आदि क्रियाएँ सकर्मक होने पर भी जब अकर्मक क्रियाओं के साथ संयुक्त क्रिया के रूप में आती हैं, तब उनका मान भी अकर्मक क्रियाओं के समान ही होता है।

प्रायः लोग केवल असावधानता के कारण भी विभक्ति-सम्बन्धी बड़ी बड़ी भूलें कर जाते हैं; और कभी-कभी तो ऐसी भूलें कर जाते हैं जिनके कारण वाक्य के अर्थ या भाव में बहुत अन्तर पड़ जाता या पड़ सकता है। जैसे—'वे हर साल समुद्र में सैर करने जाते थे', 'लारी पुल में गिर पड़ी' और 'वह घड़ा लेकर नदी में पानी भरने गई'। 'समुद्र में सैर करने जाते थे' का तो यही अर्थ होगा कि वे 'समुद्र के जल के भीतरी भाग में सैर करने जाते थे'। पर है यह बात वास्तविकता से बहुत दूर। इसलिए वाक्य का रूप होना चाहिए··· वे समुद्र की सैर करने जाते थे। 'लारी पुल में गिर पड़ी' का अर्थ यह होगा कि लारी ऊपर आकाश या अधर में थी; और वहाँ से वह नीचे पुल में गिरी। इसलिए अवस्था के अनुसार या तो होना चाहिए—'लारी पुल पर गिर पड़ी' या 'लारी पुल से गिर पड़ी'।

इसी प्रकार 'नदी में पानी भरने जाती थी' का अर्थ यह होगा कि वह पानी किसी दूसरी जगह से लाकर नदी में भरती थी; अथवा वह पानी भरने के लिए नदी के भीतरी भाग में जाती थी। इसलिए होना चाहिए—वह घड़ा लेकर नदी का (या अधिक से अधिक 'से' या 'पर') पानी भरने जाती थी। 'लोग इस फूल को माला बनाकर पहनते हैं' का तो सीधा-साधा अर्थ यही होगा कि लोग स्वयं उस फूल को माला का रूप देते हैं। इसलिए होना चाहिए—लोग इसके फूलों की (या इन फूलों की) माला बनाकर पहनते हैं।

अन्त में हम विभक्ति-सम्बन्धी एक और प्रकार की ऐसी भूल का भी उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं, जो आज कल प्रायः समाचार-पत्रों आदि में दिखाई देती है। यों बोल-चाल में हम कभी यह नहीं कहते—'भाई आपके की' या 'पुस्तक आपकी में' आदि। हम सदा 'आपके भाई की' या 'आपकी पुस्तक में' ही लिखते और बोलते हैं। इसका आशय यह है कि विभक्तियाँ सदा संज्ञाओं और सर्वनामों के साथ ही रहती हैं, उनसे दूर नहीं रहतीं। फिर भी कुछ लोग लिख जाते हैं—'उसी आदमी, जो आपके पास जायगा, को यह पुस्तक दे दीजिएगा' और 'उसी स्थान, जहाँ आप मुझे मिले थे, पर यह घटना हुई थी'। ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसे वाक्यों में, 'आदमी' के तुरन्त बाद 'को' और 'स्थान' के तुरन्त बाद 'पर' होना चाहिए।

१५

निबन्ध

साहित्य या जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले किसी विषय पर अपने जो विचार, एक साधारण लेख के रूप में, प्रकट किये जाते है, उन्हें 'निबन्ध' कहते हैं। निबन्ध किसी ऊँचे दरजे के विषय पर भी हो सकते हैं और बहुत बड़े भी हो सकते हैं। पर साधारणतः विद्यार्थियों का सम्बन्ध छोटे छोटे निबन्धों से ही होता है; इसलिए विद्यार्थियो की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि सब लोगों या बहुत से लोगों से सम्बन्ध रखनेवाले किसी विषय पर सबके समझने योग्य जो बातें अपने अनुभव या जानकारी से संक्षेप में लिखी जाती हैं, उन्हीं को 'निबन्ध' कहते है।

विद्यार्थियों को पाठशालाओ मे पढ़ने के समय भी और परीक्षा के समय भी अपने मन से किसी विषय पर कुछ लिखने के लिए कहा जाता है। उन्हें कोई एक-दो विषय बतला दिये जाते हैं; और उन्हीं विषयों पर उन्हें अपने विचार लेख के रूप में लिखने पड़ते हैं। यह विषय किसी मेले, नगर या त्योहार का वर्णन भी हो सकता है; किसी यात्रा या चढ़ाई का विवरण भी हो सकता है; किसी पशु-पक्षी या वस्तु का कथन भी हो सकता है; और किसी बात की भलाई-बुराई या हानि-लाभ का विवेचन भी हो सकता है। मतलब यह कि बालकों और विद्यार्थियों के लिखने के लिए निबन्ध के विषय सैकड़ों और हजारों हो सकते हैं।

पाठशाला में पढ़ने के समय भी और परीक्षा देने के समय भी विद्यार्थियों के लिए निबन्ध लिखने का समय थोड़ा ही होता है। इस-

लिए उनसे ऐसे ही विषयों पर निबन्ध लिखने के लिए कहा जाता है, जिनसे उनका अच्छी तरह परिचय होता है। कभी-कभी ऐसे दो-चार विषय भी बतला दिये जाते हैं और उनमें से किसी एक विषय पर निबन्ध लिखने के लिए कहा जाता है। विद्यार्थियों को उतने ही समय मे सब बातें सोचनी भी पड़ती हैं और लिखनी भी। पर हाँ, जब विद्यार्थी अपने मन से किसी विषय पर निबन्ध लिखना चाहता है, और उसके लिए समय का कोई बन्धन नहीं होता, तब उसे अपने मित्रों या बड़ों से पूछने या ग्रंथों आदि से सहायता लेने का भी समय मिल जाता है। पर परीक्षाओं में तो विद्यार्थियों को बहुत ही थोड़े समय में निबन्ध लिखना पड़ता है।

चाहे पाठशाला या परीक्षा-गृह में बैठकर थोड़े समय में निबन्ध लिखना पड़े, चाहे घर पर बैठकर मन-माने समय में, पर दोनों अवस्थाओं में पहले उस विषय पर अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए, जिस पर निबन्ध लिखना हो। उस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें मालूम हों, वे सब अपने सामने रखकर उनका एक अच्छा-सा सिलसिला बैठा लेना चाहिए। इससे निबन्ध सुन्दर भी हो जाता है और उसे लिखने में समय भी कम लगता है। यदि ऐसा न किया जायगा तो बार-बार उसमें काँट-छाँट करनी पड़ेगी और वह भद्दा हो जायगा। समय जो अधिक लगेगा, वह अलग।

निबन्ध लिखने के लिए पहली आवश्यकता ज्ञान की होती है। यह ज्ञान आस-पास की सब चीजों को ध्यान से देखने, सब तरह के लोगों से बात-चीत करने और सब तरह की पुस्तकें पढ़ने से प्राप्त होता है। कभी कभी कुछ विद्यार्थी किसी पुस्तक के दो-चार पन्नों में पढ़ी हुई बातें ही जैसे-तैसे लिखकर अपना निबन्ध तैयार कर लेते हैं। यह आदत बहुत बुरी है। इससे निबन्ध तो खराब होता ही है, अच्छे निबन्ध लिखने का अभ्यास भी नहीं होने पाता। इसलिए निबन्ध लिखने

में सब तरह से और सब प्रकार से प्राप्त किए हुए ज्ञान का सहारा लेना चाहिए। यह ज्ञान तभी प्राप्त होता है, जब इस तरह की पढ़ी और सुनी हुई बातें अच्छी तरह मन में समझ ली जायँ—सब प्रकार के विचार अपने मन में इकट्ठे कर लिये जायँ। और तब दूसरों से सुने और किताबों में पढ़े हुए वे विचार अपने शब्दों में और अपने ढंग से लिखे जाने चाहिएँ। तभी निबन्ध अच्छा और सुन्दर होता है।

जो अच्छी बातें सामने आवें, वे सब, विषयों के अनुसार अलग अलग करके लिखते चलना चाहिए। साधारण बातें तो अपनी ही भाषा में लिखी जानी चाहिएँ; पर अधिक महत्त्व की बातें अपने मूल रूप में लिखी जानी चाहिएँ; और उनके अन्त में यह भी लिख देना चाहिए कि ये बातें किस पुस्तक की अथवा किस विद्वान की है। अवसर पड़ने पर इस प्रकार की बातें उद्धरण के रूप में अपना पक्ष या मत ठीक सिद्ध करने के लिए दी जा सकती हैं। इस तरह की बातें लिखते चलने से कई लाभ होते हैं। एक तो लिखने का अभ्यास बढ़ता है। दूसरे, एक बार लिखी जाने पर वे बातें अधिक समय तक याद रहती हैं। तीसरे, इस तरह की बातें ढूँढने का शौक पैदा होता है। और चौथे, काम पड़ने पर ऐसी बातों से निबन्ध लिखने में बहुत सहायता मिलती है।

निबन्ध लिखने से पहले उसके विषय की मुख्य-मुख्य बातें अलग अलग विभागों में बाँट लेनी चाहिएँ और उनके शीर्षक बना लेने चाहिएँ। इससे यह लाभ होता है कि आवश्यक बातें छूटने नहीं पातीं; और यदि ध्यान रक्खा जाय तो व्यर्थ की बातें आने भी नहीं पातीं। इससे एक और लाभ होता है। वह यह कि विषय के सब अंगों या विभागों पर ठीक तरह से दृष्टि रहती है। यह नहीं होता कि किसी अंग या विभाग पर तो बहुत-सी बातें लिखी जायँ और किसी

अंग या विभाग पर बहुत ही थोड़ी। अथवा अनावश्यक अंग पर बहुत, और आवश्यक अंग पर कम। सब बातें ठीक क्रम से और जितनी चाहिएँ, उतनी आ जाती हैं। उन अंगों या विषयों की उपयोगिता और आवश्यकता पर ठीक और पूरा ध्यान रहता है; और सहज में यह समझ में आ जाता है कि किस अंग या विभाग पर कितना लिखना चाहिए। इस प्रकार निबन्ध हर तरह से सुन्दर, सुडौल और एक-रस हो जाता है।

जिस विषय पर निबन्ध लिखना हो उसके सम्बन्ध की सब बातें पहले अच्छी तरह मन में समझ और बैठा लेनी चाहिएँ; और तब वही बातें लिखनी चाहिएँ, जो उस विषय से सम्बन्ध रखती हों। यदि किसी मेले का वर्णन करने को कहा जाय, तो निबन्ध में मेले के सम्बन्ध की ही मुख्य मुख्य बातें होनी चाहिएँ। मेले में जाने या वहाँ से लौटने के समय रास्ते में जो बातें हुई हों, या तो उनका वर्णन होना ही नहीं चाहिए, या बहुत ही संक्षेप में होना चाहिए। या मेले में अगर कोई लड़ाई-झगड़ा हो गया तो सारा निबन्ध उस झगड़े के वर्णन से ही भरा हुआ नहीं होना चाहिए। मुख्य ध्यान अपने विषय पर ही रहना चाहिए, इधर-उधर की बातों पर नहीं। यदि इधर-उधर की कुछ बातें लानी ही पड़ें, तो वे बहुत थोड़ी होनी चाहिएँ।

हर काम या चीज के तीन मुख्य अंग होते हैं—आरम्भ, मध्य और अन्त। निबन्ध मे भी ये तीनों बातें होती हैं और इनका ठीक ठीक ध्यान रखना चहिए। निबन्ध के आरम्भ में वे बातें होनी चाहिएँ, जिनसे पढ़नेवाले को उस विषय का साधारण परिचय हो। उसे आरम्भ में ही यह मालुम हो जाना चाहिए कि निबन्ध लिखने-वाले का उद्देश्य क्या है। उस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी बातें मन मे हों, वे सब आरम्भ में ही एक दम से और एक साथ

नहीं रख दी जानी चाहिएँ। ऐसी महत्त्व की बातें मध्य के लिए बचा रखनी चाहिएँ। यदि ऐसा न किया जायगा तो मध्य और अन्त दोनों भद्दे हो जायँगे।

निबन्ध का मध्य भाग ही सबसे अधिक महत्त्व का होता है; और मुख्य मुख्य बातें उसी में होनी चाहिएँ। अच्छे अच्छे तथ्य, उदाहरण और विचार निबन्ध के मध्य में ही रहने चाहिएँ। ये सब बाते, जहाँ तक हो सके, मनोरंजक रूप में और सहज भाषा में लिखनी चाहिएँ। न तो अपने विषय से दूर जाना चाहिए, न निवन्ध में ऐसी बातें भरनी चाहिएँ, जिनसे पढ़नेवाले का जी ऊब जाय। एक ही तरह की बहुत-सी बातें एक साथ कह जाने के वदले कई तरह की थोड़ी थोड़ी बाते कहना कहीं अच्छा होता है। यदि निवन्ध का विषय इतिहास, भूगोल या विज्ञान आदि से सम्वन्ध रखता हो तो उसमे अंकों, तिथियों आदि की भर-मार नहीं होनी चाहिए। सदा इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि निवन्ध कुछ खास तरह के लोगो के लिए नहीं, बल्कि सभी तरह के लोगों के लिए होते है।

यदि निबन्ध का आरम्भ ठीक तरह से हो और उसके मध्य का अच्छी तरह निर्वाह हो जाय तो उसका अन्त करना विशेप कठिन नहीं होता। अन्त में तो सव बातों के सारांश या निचोड़ के रूप मे दो-चार वातें कह देने से ही काम चल जाता है। कभी कभी तो एक-दो वाक्यो में ही निवन्ध अच्छी तरह अन्त किया जा सकता है। पर हाँ, वह अन्त ऐसा होना चाहिए जो देखने में बिलकुल स्वाभाविक जान पड़े, जबरदस्ती ऊपर से लादा हुआ न हो। ऐसा नहीं होना चाहिए, जिससे यह जान पड़े कि निवन्ध वहुत जल्दी में पूरा किया गया है; या अव लिखनेवाले के मन में इस विषय के विचारो का टोटा हो गया है; या वह किसी तरह की लाचारी की हालत में पड़कर समाप्त कर रहा है। वल्कि ऐसा जान पड़ना चाहिए कि लिखनेवाले ने सव बातें ठीक तरह से कह दी हैं और अव वह स्वयं इसका अन्त कर रहा है।

कुछ लोग तो थोड़ा-थोड़ा लिखते हैं और बीच बीच में उसे दोहराते भी चलते हैं; और कुछ लोग सारा निबन्ध लिख चुकने के बाद उसे आदि से अन्त तक देखकर एक साथ दोहराते हैं। दोनों ही रास्ते ठीक हो सकते हैं। इनमें से कोई रास्ता अच्छा और दूसरा खराब नहीं कहा जा सकता। जो कुछ लिखा जाय, उसे दोहराने की आवश्यकता तो होती ही है; इसलिए लिखा हुआ निबन्ध एक बार दोहराना अवश्य चाहिए। यदि निबन्ध में कहीं कोई कोर-कसर रह गई हो तो वह दोहराने से दूर हो जाती है; और निबन्ध दोहाराया भी इसी लिए जाता है। पर यह दोहराने का काम ऐसा नहीं होना चाहिए कि उसमें जगह जगह काट-छाँट हो और इतनी काट-छाँट हो कि फिर से लिखना पड़े। प्रायः परीक्षाओं के अवसर पर विद्यार्थियों के पास इतना समय नहीं होता कि निबन्ध एक बार लिखने के बाद फिर से लिखा जा सके। इसलिए पहले लिखते समय ही खूब सोच-समझकर कलम चलानी चाहिए, जिसमें बाद में अधिक काट-छाँट की नौबत न आवे। बाद में तो एक बार आदि से अन्त तक पढ़ जाने और आवश्यकता हो तो कहीं कहीं कुछ घटाने-बढ़ाने से ही काम चल जाय।

निबन्धों के आदि और अन्त महत्त्व के तो अवश्य होते हैं, पर उनके सम्बन्ध में कोई विशेष बात बतलाने की आवश्यकता नहीं है। निबन्धों का सबसे अधिक महत्त्व का अंश बीच का ही होता है, क्यों-कि विषयका सारा विवेचन उसी में रहता है। यह विवेचन कई प्रकार का हो सकता है। किसी निबन्ध में किसी विषय का वर्णन मात्र हो सकता है; किसी में घटना आदि के सम्बन्ध का कुछ कथन हो सकता है; और किसी में तर्क के आधार पर किसी मत की पुष्टि या सिद्धि हो सकती है। इस दृष्टि से निबन्ध साधारणतः चार प्रकार के हो सकते हैं—वर्णनक, कथानक, विवेचनक और तर्कक। यहाँ हम इन चारों प्रकार के निबन्धों के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातें बतलाना चाहते हैं।

हम आँखों से जो कुछ देखते या कानों से जो कुछ सुनते हैं, वह जब हम अपने शब्दों में किसी से कहते है, तब उसे वर्णन करना कहते हैं। इस प्रकार की बातें जिन निबन्धों में हों, वही वर्णनक कहलाते हैं। जैसे गौ या घोड़े का वर्णन अथवा रेल-गाड़ी या बरात का वर्णन जिस निबन्ध में हो, वह वर्णनक निबन्ध कहलावेगा। पर वर्णन किसी नगर का भी हो सकता है और किसी ऐसे भूमि-खंड का भी, जिसमें कुछ मैदान भी हों, कुछ पहाड़ भी हों, एक-दो नदियाँ या नाले भी हों, कुछ जंगल भी हों और कुछ खेत या बस्तियाँ भी हों। ऐसी चीजों का वर्णन, जिनमें कई तरह की दूसरी चीजें भी मिली हों, बहुत कठिन होता है। ऐसी अवस्था में पहले उस सारी चीज के स्वरूप का ऐसा वर्णन करना चाहिए, जिससे पढ़नेवालों को उसके आकार-प्रकार आदि का ठीक ज्ञान हो सके। फिर उसके मुख्य मुख्य अंगों का अलग-अलग वर्णन होना चाहिए।-अगर उस वर्णन में सवेरे, सन्ध्या या चाँदनी रात का वर्णन अथवा किसी विशेष ऋतु की शोभा का वर्णन भी मिलाया जा सके तो और भी अच्छा है। यदि उसके रूप के साथ-साथ रंग का भी और उसमें होनेवाले पदार्थों या जीवों का भी वर्णन हो सके तो निबन्ध की सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। यदि उसे देखने पर मन में उत्पन्न होनेवाले भावों या विचारो का भी कुछ उल्लेख हो सके, तो फिर कहना ही क्या है!

यदि किसी व्यक्ति या जाति का वर्णन करना हो, तो उसके रूप-रंग, शरीर की गठन, आचार-विचार, स्वभाव, रीति-रवाज, रहन-सहन आदि का वर्णन करना चाहिए। किसी नगर का वर्णन करना हो तो उसके बाजारों, गलियों, रोजगारो, त्योहारों और मेलों का कुछ जिक्र करना चाहिए। किसी महल का वर्णन करना हो तो उसके कमरों, आँगनो आदि के सिवा उसमें की चित्रकारी या चारों ओर लगे हुए बाग-बगीचे आदि का भी वर्णन करना चाहिए; और यदि वह किसी

नदी या ताल के किनारे, किसी पहाड़ी के नीचे या किसी टेकरी के ऊपर हो तो उसका भी कुछ वर्णन करना चाहिए। मतलब यह कि जिस चीज का वर्णन करना हो, उसके अंगों का तो जिक्र होना ही चाहिए, आस-पास की जिन चीजों से उसकी शोभा बढ़ती हो या जिन चीजों की उससे शोभा बढ़ती हो, उनका भी कुछ जिक्र होना चाहिए।

जब हम कुछ घटनाओं का एक सिलसिले से जिक्र करते हैं, तब मानों हम किसी विषय का कथन मात्र करते हैं। जिन निबन्धों में इस तरह की बातें होती हैं, वे कथनक कहे जा सकते हैं। ऐसे कथनों में मुख्यतः इस बात पर ध्यान रखना पड़ता है कि कौन-सी घटना कब हुई। जो घटना पहले हुई हो, उसका कथन पहले, जो बीच में हुई हो, उसका बीच में और जो अन्त में हुई हो, उसका अन्त में कथन होना चाहिए। उदाहरण के लिए बरात के कथन में ऐसा नहीं होना चाहिए कि लड़कीवाले के घर पहुँचने का वर्णन तो पहले हो, रास्ते का वर्णन अन्त में हो और लड़केवाले के घर से चलने का वर्णन बीच में हो। या अदालत में अपराधी को मिलनेवाली सजा का वर्णन तो पहले हो, अदालत में उसके लाये जाने का वर्णन बीच में हो और उसके किये हुए अपराध या पकड़े जाने का वर्णन अन्त में हो।

कभी कभी ऐसी बातों का कथन करना पड़ता है, जिनमें दो घटनाएँ एक में मिली हुई होती हैं। ऐसी अवस्था में दोनों घटनाओं की बातें, जहाँ तक हो सके, अलग-अलग बतलाई जानी चाहिएँ; और दोनों घटनाओं का मेल ऐसी सुन्दरता से दिखलाना चाहिए कि पढ़नेवाले को कहीं से खटक न मालूम हो। जिन कारणों से अथवा जिन अवस्थाओं में वे घटनाएँ हुई हों, उनका भी कुछ उल्लेख होना चाहिए। यदि बीच में कोई ऐसी बात आ सके, जिससे उन घटनाओं का

रहस्य सहज में समझा जा सके तो और भी अच्छा है। ऐसा जान पड़ना चाहिए कि सारा कथन ऐसे व्यक्ति का है, जो दूर से खड़ा होकर दर्शक की तरह देख रहा है और सब बातें अच्छी तरह समझ रहा है। यदि किसी सुनी या पढ़ी हुई घटना का वर्णन करना हो तो वह भी ऐसा होना चाहिए कि मानों सब बातें अपनी आँखों से देखी हुई हैं।

विवेचन का सीधा-सादा और पहला अर्थ है—किसी बात की छान-बीन या जाँच-पड़ताल करना। जब हम निबन्ध में इस बात का विचार करते हैं कि कौन-सी बात ठीक है और कौन-सी ठीक नहीं है, तब हम उस विषय का विवेचन करते हैं। और इसी लिए ऐसे निबन्ध 'विवेचनक' कहलाते हैं। प्रायः विद्यार्थियों को ऐसे निबन्ध भी लिखने पड़ते हैं, जिनमें किसी बात के दोष और गुण दिखलाने पड़ते हैं या किसी बात के पक्ष और विपक्ष की सब बातें बतलानी पड़ती हैं; और अन्त में यह निर्णय भी करना पड़ता है कि इनमें से कौन-सा पक्ष ठीक है और कौन-सा ठीक नहीं है। ऐसे अवसर पर दोनों अंगों या पक्षों का पूरा-पूरा विचार करना चाहिए और किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करना चाहिए। जो बात ठीक जँचे, वह अच्छी युक्तियों से ठीक सिद्ध करनी चाहिए; और जो बात ठीक न जँचे, उसका भी वैसी ही युक्तियों से खंडन करना चाहिए। विवेचन ऐसा होना चाहिए, जिसे देखकर पढ़नेवाले हमारी बात मान लें।

पर विवेचन का एक और अर्थ होता है—व्याख्या। कोई विषय लेकर विस्तार से उसकी सब बातें समझाना भी विवेचन कहलाता है। ज्ञान और विज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर जो कुछ लिखा जाता है, वह इसी विवेचन में आता है। हम यह भी बतला सकते हैं कि लेख किस प्रकार लिखना चाहिए और यह भी बतला सकते हैं कि आकाश में सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि ग्रह कैसे और कहाँ रहते और किस प्रकार चक्कर काटते हैं। हम यह भी बतला

सकते हैं किन-किन देशों में कैसे-कैसे पेड़-पौधे उगते हैं और कैसे-कैसे जीव-जन्तु रहते हैं।

इस प्रकार के विवेचनक निबन्ध लिखने के लिए विषय के बहुत अधिक ज्ञान की भी आवश्यकता होती है और लिखने की योग्यता की भी। ऐसा विवेचन, जहाँ तक हो सके, सरल और स्पष्ट होना चाहिए; और उसमें उस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली काम की और जानने योग्य सभी बातें आ जानी चाहिएँ। ऐसे विवेचनों में हम दूसरों के विचार भी रख सकते हैं, और यह भी बतला सकते हैं कि वे विचार कहाँ तक ठीक हैं, या कहाँ तक ठीक नहीं हैं।

हम ऊपर कह आये हैं कि कभी-कभी हमें किसी बात के दोषों और गुणों का भी विवेचन करना पड़ता है। पर कभी कभी हमें एक ही पक्ष ग्रहण करना पड़ता है। कभी हमें किसी बात के सम्बन्ध में सिद्ध करना पड़ता है कि वह ऐसी ही है; और किसी प्रकार की नहीं है। जिन निबन्धों में कोई एक ही पक्ष लेना पड़ता है, वे तर्कक कहलाते हैं। जैसे—हमसे कहा जा सकता है कि यह सिद्ध करो कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्र भाषा है; या पृथ्वी सदा सूर्य की परिक्रमा करती रहती है; या सब प्रकार की उन्नति करने के लिए पहले सच्चरित्र होना चाहिए। इस प्रकार के निबन्ध तर्कक कहलाते हैं। तर्कक निबन्ध लिखना बहुत कठिन होता है। इसमें अनेक प्रकार के प्रमाणों की आवश्यकता होती है और कुछ युक्तियाँ भी देनी पड़ती हैं। हम जो कुछ कहते हैं उसके विरोध में जो बातें कही जाती हैं, उनपर भी हमें विचार करना पड़ता है; और अन्त में उनका खंडन भी करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर विरोधियों की बातें हँसी में उड़ाने से या उनपर ध्यान न देने से काम नहीं चल सकता। इसलिए हमें अपना पक्ष ऐसे ढंग से दूसरों के सामने रखना चाहिए कि वे हमारी बात पूरी तरह से ठीक मान लें।

अच्छे निबन्ध लिखने के लिए पहले अच्छे निबन्ध पढ़ना आवश्यक होता है। निबन्ध लिखने का अभ्यास करने के लिए पहले कोई अच्छा निबन्ध पढ़ जाना चाहिए; और तब उसे अपने मन से और अपने शब्दों में लिखकर उसे मूल निबन्ध से मिलाना चाहिए। अपने निबन्ध में जहाँ कमी दिखाई पड़े, वहाँ वह पूरी करनी चाहिए; और जहाँ दोष दिखाई पड़े, वहाँ उसे दूर करना चाहिए। इसके लिए पहले वे विषय लेने चाहिएँ, जिनसे अपना प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो; या ऐसी घटनाएँ आदि लेनी चाहिएँ; जो स्वयं आँखों से देखी हों। दूसरों से सुने-सुनाये या पुस्तकों में पढ़े हुए विषयों पर कुछ लिखने की अपेक्षा अपने परिचित विषयों पर कुछ लिखना अधिक सहज होता है। ऐसे निबन्ध अपने मित्रों या बड़ों या बड़ों आदि को लिखे हुए पत्रों के रूप में भी हो सकते हैं; और उनके कई खंड या विभाग भी हो सकते है।

निबन्ध लिखने का अभ्यास एक और प्रकार से किया जा सकता है। कोई अच्छी कहानी, नाटक या उपन्यास पढ़कर उसके किसी एक पात्र या घटना के सम्बन्ध की सब बातें अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर लिखी जा सकती हैं। आगे चलकर उसी ढंग पर अपने किसी परिचित व्यक्ति के विचार, चरित्र या व्यवहार आदि भी लिखे जा सकते हैं। अथवा किसी छोटी घटना का वर्णन सुनकर उसे विस्तार से भी लिखा जा सकता है। इससे कल्पना करने की शक्ति बढ़ती है। विशेषतः यदि इतिहास की कोई घटना लेकर और उसे कुछ बढ़ाकर अथवा कोई अच्छी खबर नये ढंग से बढ़ाकर लिखने का प्रयत्न किया जाय तो और भी अधिक लाभ हो सकता है।

अभ्यास के लिए नये विद्यार्थी प्रायः नीचे लिखे विषयों पर निबन्ध लिख सकते हैं—

नदी के किनारे का दृश्य।	घर के पालतू पशु-पक्षी।
सज्जनता का व्यवहार।	अपने रहने का घर।

व्यायाम से लाभ।	हमारी जन्म-भूमि।
त्योहार और मेले।	नगर का सुधार।
महापुरुषों के कार्य।	प्रसन्न रहने के उपाय।
मन के कार्य।	पुस्तकालयों से लाभ।
देहाती जीवन।	रोगों से बचने के उपाय।
बड़ों का आदर।	अच्छे चरित्र का महत्त्व।
लड़ाई-झगड़े से हानि।	देव-मन्दिर।
स्वास्थ्य रक्षा।	मिथ्या विश्वास।
अनाज और फल।	दूध देनेवाले जानवर।
समझदारी और मूर्खता।	ऐतिहासिक कहानियाँ।
सूर्य, चन्द्रमा और तारे।	नदियों से लाभ।
जीवन पर साहित्य का प्रभाव।	किसी पुस्तक की विशेषताएँ।
सदाचार का प्रभाव।	अनुकरण के योग्य कार्य।
आज कल की सभ्यता।	बात-चीत करने का ढंग।

आदि आदि।

'हिन्दी प्रयोग' के सम्बन्ध में चुनी हुई सम्मतियाँ

(१) मध्य प्रदेश के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर डा० वेणीशंकर जी झा—

"मुझे आश्चर्य तो यह है कि इतनी अधिक जानने योग्य बातें, इतने थोड़े में और ऐसे मनोरंजक ढङ्ग से कैसे इस छोटी-सी पुस्तक में भर दी गई हैं।"

(२) श्री महेन्द्रप्रताप जी शास्त्री, प्रिन्सिपल, दयानन्द कालेज, लखनऊ—

"यह पुस्तक केवल विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, अपितु हिन्दी के अध्यापकों तथा लेखकों के लिए भी उपयोगी है।"

(३) श्री कालिदास कपूर, हेड मास्टर, कालीचरण हाई स्कूल, लखनऊ—

"यह पुस्तक इस योग्य है कि हिन्दी के विद्यार्थियों को पढ़ाये जानेवाले व्याकरणों के स्थान पर उन्हें यही पढ़ाई जाय।"

(४) श्री महावीरप्रसाद जी अग्रवाल एम० ए०, दरबार कालेज, रीवाँ—

"हाई स्कूल कक्षाओं में यह पुस्तक अनिवार्य रूप से पढ़ाई जानी चाहिए।"

(५) श्री डा० व्रजमोहन जी एम० ए०, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी—

"पुस्तक हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। प्रत्येक विद्यार्थी को यह पुस्तक कम-से-कम एक बार अवश्य पढ़नी चाहिए।"

(६) श्रीकृष्ण हाई स्कूल, बरहज के हिन्दी अध्यापक पं० भवानी शंकर—

"वर्मा जी ने विद्यार्थियों की आवश्यकता का ध्यान रखकर, यह श्लाघ्य प्रयत्न कर, एक अमूल्य देन दी है।"

(७) ऐंग्लो संस्कृत इन्टर कालेज, फतेहपुर के पं० शिवदत्त जी त्रिवेदी—

"यह विद्यार्थियों के लिए बहुत लाभप्रद है। ऊपर की काई हटाकर भाषा के स्वच्छ और स्वाभाविक स्वरूप को स्पष्ट रखने का यह प्रयास स्तुत्य है।"

(८) श्री हरिश्चन्द्र जी, संस्कृत हिन्दी विभागाध्यक्ष, आर० एन० भाई० हाई स्कूल, भगवानपुर—

"यह पुस्तक हाई स्कूलों की सातवीं से दसवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों

के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक है। आश्चर्य यह है कि गागर में सागर भर दिया है !"

(९) श्री काशीराम शर्मा, अध्यापक, श्री० नी० बी० वी० कालेज, मुजफ्फरपुर—

"यह पुस्तक मैट्रिक और आई० ए० के विद्यार्थियों के लिए तो बहुत लाभप्रद है, सरकारी और गैर सरकारी दफ्तरों के लिए भी यह आवश्यक है।

(१०) श्री काशीराम शर्मा, अध्यापक, मुसलिम जाट हाई स्कूल, आगरा–

"छात्रों को व्याकरण में दक्ष बनाने और हिन्दी भाषा के शुद्ध प्रयोग सिखाने के लिए इससे अच्छी पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई।"

(११) श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन', काव्य-कुटीर, सासनी (अलीगढ)—

"मेरी राय में पुस्तक कक्षा ८ से लेकर कक्षा १२ तक के प्रत्येक विद्यार्थी को अवश्य पढ़ानी चाहिए।"

(१२) श्री रामेश्वरदयाल खडेलवाल, हिन्दी लेक्चरर, श्रीजगदीश शरण हिन्दू इन्टर कालेज, अमरोहा (मुरादाबाद)—

"क्या मैं विद्यार्थियों का अनहित चाहता हूँ जो ऐसे सुन्दर पुस्तक-रत्न को अपने यहाँ की हाई स्कूल कक्षाओं के छात्रों के लिए न रक्खूँगा ?"

(१३) पं० उमामहेश शास्त्री, हेड पंडित, राजा शंकरसहाय हाई स्कूल, उन्नाव—

"दस वर्ष के अध्यापन काल के अनुभव में मुझे आज तक कोई ऐसी विशुद्ध तथा प्राञ्जल पुस्तक हस्तगत नहीं हुई।"

(१४) श्री ओम् प्रकाश दीक्षित, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस० एस० कालेज, खटौली—

'पुस्तक अँधेरे में दीपक का कार्य कर रही है। हिन्दी का भविष्य ऐसी ही पुस्तकों पर अभिमान करेगा।'

अच्छी हिन्दी

(लेखक–रामचन्द्र वर्मा)

'हिन्दी प्रयोग' पढ़ चुकने के बाद भाषा की शुद्धता से सम्बन्ध रखनेवाली और अधिक तथा ऊँचे दरजे की बातों का पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए "अच्छी हिन्दी" अवश्य पढ़िए।

लेखकों और कवियों के लिए, सम्पादकों और संवाददाताओं के लिए, अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए, व्याख्यानदाताओं और लोक-सेवकों के लिए, व्यापारियों और लिपिकों के लिए, 'अच्छी हिन्दी' पढ़ना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। इसे पढकर लेखक और सम्पादक अपने लेख प्रभावशाली बना सकते हैं, व्याख्यानदाता लोगों पर अधिक प्रभाव डाल सकते हैं, अध्यापक अपने विद्यार्थियो को अच्छो तरह शुद्ध भाषा सिखा सकते हैं और विद्यार्थी परीक्षा में अधिक अङ्क प्राप्त कर सकते हैं। 'अच्छी हिन्दी' का अध्ययन सभी तरह के लोगों के लिए इतना अधिक लाभदायक है कि शब्दों में उसका वर्णन नहीं हो सकता।

छपने के एक वर्ष के अन्दर ही भारत के आठ-नौ प्रमुख विश्वविद्यालयों और हाई स्कूल इण्टर बोर्डों, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास, राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा, गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी, हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई, महिला विद्यापीठ, प्रयाग आदि सभी प्रमुख सस्थाओं की भिन्न-भिन्न परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में इस पुस्तक को स्थान मिल गया था। और अब तक वह बराबर सब जगह पाठ्य-क्रम में है।

चौथा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ-संख्या २७१; मूल्य ३), वी० पी० से ३।≈)

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,
२० धर्मकूप, बनारस।

हिन्दी भाषा का विकास

[लेखक—स्व० डा० श्यामसुन्दरदास, बी० ए०]

जैसा कि इस पुस्तक के नाम से ही प्रकट है, इसमें यह बतलाया गया है कि आरम्भ से अब तक हमारी हिन्दी भाषा का किस प्रकार विकास हुआ है। इसमें प्राचीन आर्यों की भाषा, संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश आदि के विवेचन के साथ ही यह भी बतलाया गया है कि पुरानी हिन्दी का स्वरूप क्या था और पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, अवधी, व्रजभाषा और खड़ी बोली में क्या भेद और विशेषताएँ हैं। विद्यार्थियों के लिए बहुत काम की चीज है। पृष्ठ-संख्या ११७, मूल्य ||।-)

रूपक-विकास

[ले० श्री वेदमित्र 'व्रती' साहित्यालंकार]

इस पुस्तक में नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी जानने योग्य सभी मुख्य बातों के विस्तृत विवेचन के अतिरिक्त हिन्दी के सभी प्रकार के नाटकों का आलोचनात्मक विवेचन और नाटककारों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके सिवा, बँगला, मराठी, गुजराती आदि के प्रमुख नाटकों और नाटककारों का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। भारतीय संस्कृत नाटकों के आरम्भ से आजतक के हिन्दी नाटकों की सब बातों का ज्ञान करानेवाली इससे अच्छी और कोई पुस्तक आपको न मिलेगी। विद्यार्थियों के लिए बहुत अधिक उपयोगी है। पृ० २४२, मूल्य २||)

साहित्य-रत्न-माला कार्यालय,
२० धर्मकूप, बनारस।